गाधी मन्दिरकी तृतीय प्रतिमा

सम्राट् अशोक

नाटक

लेखक—

चन्द्रराज भण्डारी "विशारद"

प्रकाशक—

गांधी हिन्दी मन्दिर—अजमेर

प्रथम संस्करण] जनवरी १९२३ [मूल्य १॥) रुपया

प्रकाशक—
गांधी हिन्दी मन्दिर
अजमेर।

सूचना—

विना लेखककी आज्ञाके कोई महाशय इसे स्टेज पर न खेलें।

मुद्रक—जगदीशनारायण तिवारी
"वणिक् प्रेस"
६०, मिर्ज़ापुर स्ट्रीट,
कलकत्ता

सम्राट् अशोक
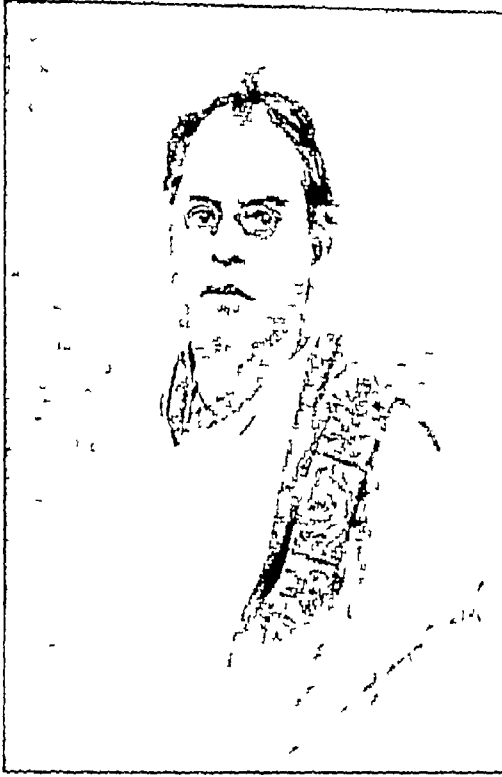
प्रसिद्ध नाट्यकार—
स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय

Banik Press, Calcutta

जिन महानुभावके आदर्श ग्रन्थ रत्नोंका
अध्ययन कर लेखकने नाट्यकलाका कुछ
ज्ञान प्राप्त किया। उन्हीं प्रसिद्ध
नाट्यकार

श्रीद्विजेन्द्रलाल राय

की

स्वर्गीय आत्माकी पवित्र स्मृतिमें यह
तुच्छ कृति भक्ति पूर्वक

समर्पित

है।

भवदीय—

चन्द्रराज भण्डारी।
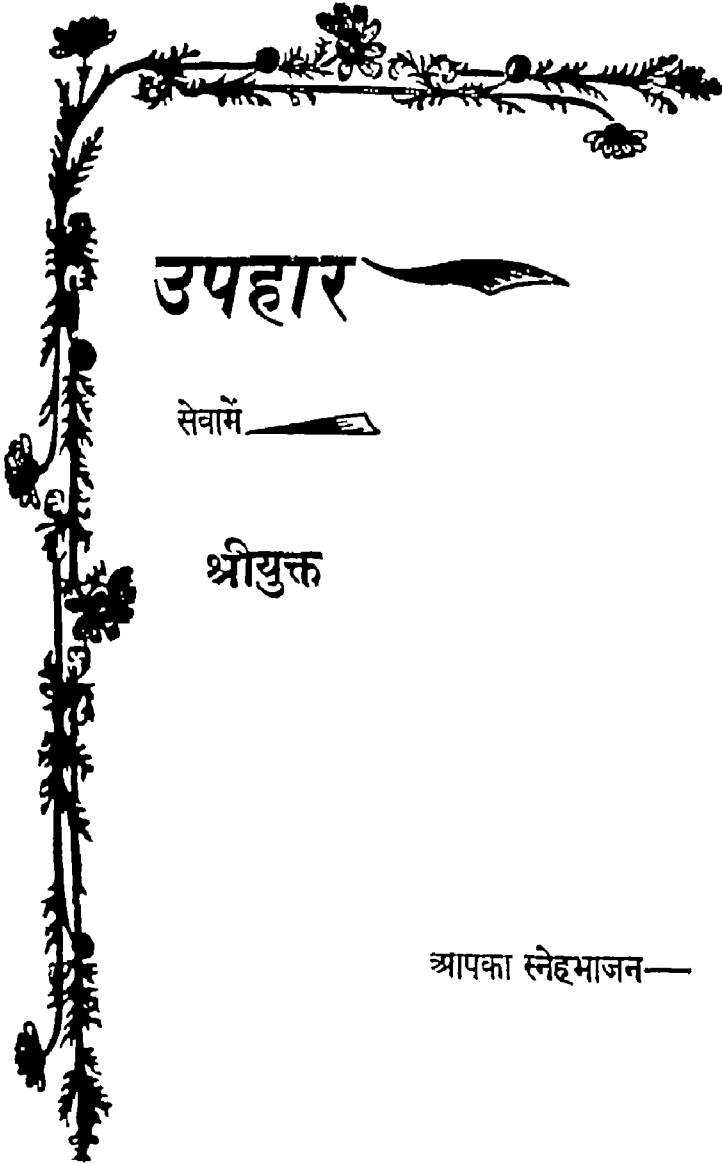
उपहार—

सेवामें—

श्रीयुक्त

आपका स्नेहभाजन—

निवेदन

मुझे अत्यन्त हर्ष है कि मेरे लिखे हुए नाटक "सिद्धार्थ कुमार" का हिन्दी संसारने अच्छा आदर किया। केवल एक ही मासमें उसका एक संस्करण खतम हो गया। इस आशातीत सफलतासे प्रोत्साहित होकर, मैं यह दूसरा नाटक पाठकोंकी सेवामें पेशकर रहा हू। नाटक कैसा है, इसके विषयमें मुझे कुछ कहनेका अधिकार नहीं। इसका निर्णय सहृदय पाठक ही करेंगे। मुझे आशा है हिन्दी ससार इसको भी उसी तरह स्वीकार कर मुझे प्रेत्साहित करेगा।

शान्ति मन्दिर भानपुरा (इन्दोर राज्य) ता' १ दिसम्बर १६२२	विनीत चन्द्रराज भण्डारी।

आभार प्रदर्शन

प्रस्तुत पुस्तकका कथानक श्रीयुत वालचंद नानचद शाह द्वारा लिखित और श्रीयुत हरिभाऊ उपध्याय द्वारा अनुवादित "सम्राट् अशोक" नामक पुस्तकसे लिया गया है। अतएव हम उपरोक्त दोनों महाशयोंके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

इसके अतिरिक्त इस पुस्तकके गायन हमारे सुहृद् मित्र श्रीयुत प० रामगोपाल त्रिवेदीने बना देनेकी कृपा की है। अतएव हम उनके भी अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

—लेखक।

नाटकके पात्र

पुरुष पात्र

सम्राट् अशोक	भारतके सम्राट्
राजा मृगेन्द्र	कलिंगदेशके राजा
कुमार जितेन्द्र	कलिंग देशके युवराज
मोग्गलीपुत्र तिष्य	बौद्ध धर्मके आचार्य्य
सम्पुष्टाचार्य्य	"
श्रेष्ठि उपगुप्त	मथुरा नगरका एक सेठ
स्वामी चिदानन्द	हिन्दू धर्मके आचार्य्य
विशाखानन्द	कलिंग देशके मन्त्री
वीताशोक	अशोकके सौतेले भाई
मोहन	अशोकका शरीरसंरक्षक

स्त्री पात्र

प्रणयिनी	मृगेन्द्रकी पुत्री
प्रमिला	विशाखानन्दकी स्त्री
इन्दिरा	अशोककी बहिन
इन्दुमती	मृगेन्द्रकी रानी
रानी बुद्धिमती	अशोककी सौतेली मा
कुन्दनन्दिनी	उपगुप्तकी स्त्री
बनमाला	मोहनकी स्त्री

नौकर, दास दासी वगैरह

भूमिका

संसारके आधुनिक नाट्यकला विशारदोंने नाटकोंके दो विभाग करदिये हैं। एकको हम आइडियालिस्टिक अथवा आदर्शवादी और दूसरेको रियालिस्टिक या प्रकृतिवादी कह सकते हैं। जिन नाटकोंमें, पाप एवं भण्डताकी एक छींटसे भी रहित आकाशके समान निर्मल एवं विश्वास समान स्वच्छ चरित्र अङ्कित किया जाता है, जिन नाटकोंका लेखक केवल एक आदर्शका उज्वल चित्र दिखानेके लिये कलम उठाता है। वे नाटक आइडियालिस्टिक कहलाते हैं। इस श्रेणीके नाटकोंको पढते ही हमारे सम्मुख एक उज्वल चरित्र की दिव्य मूर्त्ति नृत्य करने लगती है। इस श्रेणीके नाटकोंको पढ़ते ही हमारी हृदय तन्त्रीमें पवित्रताके तार झनझना उठते हैं। उस आदर्श चरित्रको देखते २ हमारा हृदय गद्‌गद् हो जाता है और वह बलात्कार उस चरित्रकी पूजा करनेको आतुर हो उठना है। वह चरित्र इतना उत्कृष्ट हो जाता है कि, उसे मानवचरित्र ही नहीं कहा जा सकता। हां, कुछ संकोचके साथ वह देवचरित्र कहा जा सकता है। लेकिन यह चरित्र इतना सुन्दर होनेपर भी सजीव नहीं कहा जा सकता। मन्दिरके अन्दरकी प्रतिमाएं जिस प्रकार सुन्दर और पवित्र होनेपर भी सजीव नहीं होती, उसी प्रकार ये नाटक भी सजीव नहीं कहे जा सकते। इन नाटकोंका चरित्र शुरूसे आखिरतक एक ढांचेमें ढला हुआ, एवं उत्थान और पतनसे बिलकुल विहीन होता है।

रियालिस्टिक नाटकोंमें यह बात नहीं होती। उनके

अन्दर मनुष्य प्रकृतिका यथार्थ चित्रण किया जाता है। घटनाओंके घात प्रतिघात दिखाये जाते हैं और उत्थान एवं पतनके सजीव दृश्य अंकित किये जाते हैं। इन नाटकोंकी गति निर्मल बन्धे हुए तालाबकी भांति स्थिर नहीं होती, प्रत्युत स्वच्छन्द प्रवाह वाली टेढ़ी मेढ़ी बहती हुई सरिताकी भांति होती है। संसारके अन्दर नित्य प्रति होनेवाली पाप और पुण्यकी जो घटनायें हम देखा करते हैं, सफल नाटककार उन्हीं घटनाओंके अन्दरसे अपनी सामग्री ढूंढ़ निकालता है। हमारे जीवनके क्षुद्र रङ्ग मञ्चपर जो छोटेसे छोटे अभिनय हुआ करते हैं, उनका विराट् पुरुषके विराट नाट्य मञ्चपर खेले जानेवाले महा नाटकके हर एक अंक और दृश्यसे सम्बन्ध रहता है। वास्तविक नाटककार उन्हीं छोटी छोटी घटनाओंसे अपने उत्कृष्ट नाटककी रचना करता है। संक्षिप्तमें यह कहा जा सकता है कि जिनमें स्वर्गका चित्र चित्रित किया जाता है उन्हें आइडियलिस्टिक एवं जिसमें मानव लोकका चित्र अंकित किया जाता है उन्हें रियालिस्टिक कहा जाता है।

प्रस्तुत नाटकको भी यदि हम "रियालिस्टिक" की श्रेणीमें रक्खें तो कुछ अनुचित न होगा। यद्यपि इस नाटकमें नायकोंकी संख्या अधिक होनेसे सबका चरित्र पूर्णरूपसे स्पष्ट नहीं हो पाया है, फिर भी जितना भी कुछ हो सका है, उससे हमारे कथनको पुष्टि मिलती है। इस नाटकके प्रधान पात्रोंमें हम अशोक, प्रणयिनी, जितेन्द्र, इन्दिरा, प्रमिला, मृगेन्द्र, सम्पुष्टाचार्य, उपगुप्ताचार्य्य और स्वामो चिदानन्दका नाम ले सकते हैं। पहले चार पात्रोंका चित्र पूर्णरूपसे तो नहीं पर आंशिक रूपमें अवश्य स्पष्ट हो गया है। प्रमिलाका चरित्र बिलकुल साफ एवं स्पष्ट है। और पिछले चार पात्रोंका चित्र बहुत कम स्पष्ट हुआ है।

प्रथम अङ्कमें हम सम्राट अशोकको वीर, कट्टर बौद्ध मतावलम्बी, एवं चरित्रके सब दोषोंसे विहीन एक निर्मल मनुष्यके रूपमें पाते हैं। धर्म प्रचारके निमित्त निष्ठुर आचार्य्यकी सम्मतिसे उसने अबतक कितने ही निरपराधोंका खून बहा दिया है पर इस युद्धमें—लगातार चार मासके—युद्धमें उसकी सुप्त सत्प्रवृत्ति जागृत हो उठती है। जिस बातको वह अबतक नहीं समझा था, वही बात उसके नेत्रोंके सम्मुख नृत्य करने लगती है। "अहिंसा धर्मका प्रचार करनेके लिये इतना हिंसाकाण्ड!!! कैसा अन्याय है!" यह विचार आते ही वह आगेसे युद्ध न करनेका निश्चय कर लेता है और उसी समय मृगेन्द्रसे सन्धि करनेको तैयार हो जाता है। इतने ही में सम्पुष्टाचार्य्य आता है और उसे दो दिनमें ही कालिंग विजयका प्रलोभन देता है। यदि अशोक देवता होता तो अवश्य उस प्रलोभनको लात मारकर सन्धि कर लेता। पर था तो आखिर वह इसी मनुष्य लोकका प्राणी। दो दिनमें—केवल दो दिनमें—कालिंग देशके भाग्यकी कुञ्जी उसके हाथमें आ जायगी! भला इस मधुर लोभका संवरण वह कैसे कर सकता था? उसने उसी समय उस प्रस्तावको स्वीकृत कर लिया, पर जब पीछेसे उसे मालूम हुआ कि, कालिंग विजय कितनी दुष्टताके साथ किया गया है, तब तो उसका कोमल हृदय पसीजकर चूर २ हो गया। मनुष्य होनेपर भी वह एक उच्च श्रेणीका मनुष्य था यदि दुःखका करुण आर्त्तनाद सुन कर भी उसका हृदय न पसीजता तो अवश्य वह मनुष्यत्वसे गिर जाता उसका चरित्र नरकका एक नमूना हो जाता। अन्तमें उसका हृदय यहा तक पसीजा कि, उसका युद्ध न करनेका निश्चय दृढ़निश्चयके रूपमें परिवर्त्तित हो गया।

युद्ध बन्द हो गया, रक्तपातका कोलाहल मिट गया।

शान्तिका साम्राज्य शुरू हुआ। शान्तिके मिलते ही प्रेमका आविर्भाव हुआ। अब उस सरल हृदय सम्राट्को अपना जीवन मरुभूमिके समान मालूम होने लगा। उसे अपना जीवन सार्थक बनानेके लिये एक योग्य प्रणयिनीकी आवश्यकता हुई। सो भी कैसे? केवल मोर और मोरनीका नृत्य देखनेसे! कितनी क्षुद्र घटना है! लेकिन हम पहले कह चुके हैं कि, छोटी घटनाओंका बडी घटनाओंसे सम्बन्ध रहता है। खैर, प्रणयिनीकी कल्पना मनमें आते ही उसके सम्मुख हूबहू वही कल्पना मूर्ति दिखाई दी। सब कुछ वही था, केवल वेषभूषामें अन्तर था। वह अनिन्द्य सौन्दर्य्य अपनेको पुरुष वेषमें ढके हुए था। देखते ही वह चकित हो गया। उसका मन हाथोंसे जाता रहा। उसने एक दम खींचकर उसे अपने सिंहासनपर बिठा लिया।

प्रणयिनीको गिरफ्तार कर अशोकके सैनिक अवश्य लाये थे। पर जहांतक हमारा अनुमान है प्रणयिनीको गिरफ्तार करवानेमें अशोकके सैनिकोंकी शक्तिने, कुन्दकी पतिभक्तिने और स्वय उसके बन्धुप्रेमने, जो काम नहीं किया वही उस गुप्त आकर्षणने किया, जो बिलकुल अस्पष्ट रूपसे उसके हृदयमें मौजूद था। उसी गुप्त आकर्षणके कारण प्रणयिनी अपने कठोर शत्रु अशोकको देखकर भी कह उठती है—"कैसा सौम्य मुख है!" चाहे सब लोग समझें या न समझें पर प्रेमतत्वका ज्ञाता तो फौरन कह उठेगा कि इसी एक वाक्यमें प्रणयिनीने अपनी सब कामनाओं और मनोभावनाओंको विलीन कर दिया, वह उसी समय अपने तनोबदनकी सुधि भूल गई। पर कुछ ही समय के पश्चात् उसे अपने कर्तव्यका स्मरण हो आया। ज्यों ही सम्राट्ने उसका हाथ पकड़ा, वह झिझककर दो पैर पीछे हट

गई। पर केवल इस डरसे कि कहीं मैं पहचान न ली जाऊं, वह सम्राट्के पास बैठ गई। आई तो थी वह दूसरोंको धोखा देनेके लिये, पर स्वय धोखा खा गई। दूसरेको ठगनेके बदले वह स्वय ठगा गई। वह हार गई, लेकिन उसकी वह हार विजयसे भी अधिक महत्वपूर्ण हुई। और जिस समय प्रमिलाके षड्यन्त्रमें फँसकर अशोक शेरके पजेमें चला गया, उस समय तो उसका महिमामय उज्वल सौन्दर्य्य एकदम प्रगट हो गया। उसने अपने प्राणोंकी तनिक भी चिन्ता न कर सम्राट्की रक्षाके लिये अपने आपको सिंहके पजेमें दे दिया!

अपूर्व दृश्य है! इस दृश्यको लिखकर लेखकने स्वर्ग और नरकको एक स्थानपर एकत्रित कर दिया है। जिस अशोककी जान लेनेके लिये उसकी (सौतेली) माता तडफड़ा रही है उसीकी रक्षा करनेको उसके कठोर शत्रुकी कन्या अपनी जान विसर्जन कर रही है! स्वार्थत्याग भी इस दृश्यको देखकर आंसू बहाने लग जाता है! विश्वास भी इस दृश्यको देखकर गद्गद हो जाता है! पाठकोंको यह स्वर्ग और नरकका दृश्य तो स्पष्ट समझमें आ जायगा, पर इन दोनोंके बीचमें जो एक पतली सी मर्त्यलोककी धारा बह रही है, वह बहुत ही अस्पष्ट है। उसी मर्त्यलोककी एक अस्पष्ट झलकने इसे मानवीय रूप दे रक्खा है नहीं तो यह चरित्र अवश्य स्वर्गीय हो जाता। इस स्वर्गीय दृश्यमें एक छोटीसी स्वार्थकी भावना नजर आती है। प्रणयिनीने पूरा नहीं तो कमसे कम आधा हृदय उस समयतक सम्राट्के अर्पण कर दिया था। मस्तिष्कके साथ बहुत समयतक युद्ध करनेके पश्चात् अन्तमें हृदयने विजय प्राप्त कर ली थी। उसने सम्राट्को अपना स्वामी मान लिया था और अपने स्वामीकी रक्षाके लिये सती रमणीका

प्राण विसर्ज्जन करदेना यद्यपि बहुत उच्च है, फिर भी मर्त्यलोकके लिये सम्भव है। यह अति मानुष नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार राजमाता यद्यपि बिलकुल नरकका नमूना है, पर फिर भी उसके अनन्य पुत्रस्नेहने उसे मर्त्यलोककी बना रक्खा है।

प्रणयिनीके हृदयका अन्तर्युद्ध दिखलाकर नाटककारने उसके हृदयको भी बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। उसके हृदयमें प्रेम और कर्तव्यका एक अद्भुत युद्ध ठन रहा है। कर्तव्य कहता है पितृद्रोहीसे, धर्मके घातकसे, देशके शत्रुसे प्रेम करना भारी पाप है। कर्तव्यकी इस पुकारको सुनकर वह विचलित हो जाती है। वह कहती है; "ना, उस कल्पनाको अब मनमें न आने दूंगी" इतने हीमें प्रेम कहता है "प्रेम करनेमें पाप! जो जितना कुत्सित है, उसे प्रेम करनेमें उतना ही पुण्य है। तिसपर भी तुम्हारे पिताके साथ, देशके साथ, धर्मके साथ अत्याचार करनेमें अशोकका तो हाथ नहीं था। उसका हृदय तो शिशु से भी अधिक निर्मल है। फिर यदि तुम उसे अपने हृदयमें स्थान दो तो क्या हानि है?" इस दलीलको सुनते ही प्रणयिनी अवाक् हो जाती है। प्रेमकी विजय होती है, कर्तव्य प्रेममें लीन हो जाता है। मनुष्य प्रकृतिका वास्तविक एवम् सुन्दर चित्र है। अपना हृदय पूर्णरूपसे सम्राट्के अर्पण कर चुकनेपर भी जिस समय विवाहका प्रसंग आता है—आचार्य्य उसका हाथ सम्राट्के हाथमें देनेके लिये बुलाते हैं, उस समय वह चुपचाप खड़ी होकर अपने पिताकी ओर देखती है। उसका हृदय उसे सावधान करता है। "खबरदार अपने प्रेमके प्रवाहमें पितृभक्तिको मत बहा देना नहीं तो यह निर्मल प्रवाह एकदम गन्दा हो जायगा।" अन्तमें जब मृगेन्द्र उसे सहर्ष अनुमति देते हैं, तभी वह अशोकको ग्रहण करती है। पितृभक्तिका उत्कृष्ट नमूना है।

इस नाटकके अन्दर प्रमिलाका चित्र बहुत ही विषम है। प्रमिला एक महत्वाकांक्षिणी स्त्री है। बचपनमें ही उसके माता पिताका देहान्त हो गया था। तभीसे राजा मृगेन्द्रने अपनी प्रणयिनीके साथ इसका लालन पालन किया था। बचपनसे ही यह आत्माभिमानिनी एवं महत्वाकांक्षिणी थी। कुछ बड़ी उम्र होनेपर इस धृष्ट लड़कीने जितेन्द्रके साथ अपना विवाह कर देनेकी इच्छा प्रगट की। इसकी इस धृष्टताको देखकर मृगेन्द्र अपनी हंसीको न रोक सका। वह खिल खिलाकर हंस पड़ा। उसी समयसे चोट खाई हुई नागिनकी तरह यह गुस्सेमें अंधी हो गई। और तभीसे वह मृगेन्द्रकी पूरी दुश्मन बन बैठी। एवं बदला चुकानेके इरादेसे उसने बुड्ढे विशाखानन्दके साथ विवाह कर लिया। फिर इसने किसप्रकार षड्यन्त्रसे कलिङ्ग देशका विनाश किया, वह नाटकमें पूर्णरूपसे व्यक्त है। इसका चरित्र नाटकमें पूर्ण स्वाभाविकताके साथ चित्रित किया गया है। प्रथम अंकके दूसरे दृश्यमें प्रमिला पहले तो क्या विचार कर रही है, वह स्वयं अपने आपको पिशाची ठहरा रही है। पर ज्यों ही विशाखानन्द आते हैं वह सतीत्वकी प्रतिमूर्त्ति बन जाती है। पता नहीं उसका हृदय किस धातुका बना हुआ था! हम तो यहांपर एक बंगाली कविके इन्हीं वचनोंको स्मरण कर सन्तुष्ट हो जाते हैं कि, "भगवान्! तुमने पापको कितनी सुन्दर पोशाक दी है। नरकके पथको कितना कुसुमास्तृत बनाया है॥

अन्तमें जब वह अपने सब प्रयत्नोंमें असफ़ल हो जाती है। एव इन्दिराकी हत्या करते २ गिरफ्तार हो जाती है, तबतो हमें उसका और ही रूप नज़र आता है। जो अपराधी होता है उसके हृदयमें भय रहता है, उसे अपने किये पर पश्चाताप होता है। पर प्रमिलामें दोनों बातें नहीं हैं। न तो उसे किसी प्रकारका डर

है न पश्चाताप। जब मृगेन्द्र उसे क्षमा कर देता है, तब वह अपनी छाती तानकर कहती है मृगेन्द्र! मैं तुम्हारी क्षमाको लात मारती हूं। मैंने न तो किसीको क्षमा किया है, न किसीसे क्षमा चाहती हूं। मृगेन्द्र! मुझे अपने गिरनेका दुःख नहीं है, अपनी ही शक्तिसे ऊपर चढ़ी थी, और गिर पड़ी। इसका कोई दुःख नहीं है। स्त्री जीवन धारण करके भी मैंने एक राज्य पर शासन किया, यही क्या कम है? महाराज! मैं जहरका प्याला पी चुकी हूं। अब नरककी भीषण अग्निमें जलने जा रही हूं। और साथमें ले जा रही हूं उस बौद्ध भिक्षुकी अथाह चाह! इतना कह कर वह उसी समय पतित हो जाती है। मानो आकाशसे एक चमकता हुआ नक्षत्र टूट पड़ा! मानों पापका जलता हुआ चिराग बुझ गया! मानों कृतघ्नताके सिरका मुकुट गिर पड़ा! हमारी तो समझमें ही नहीं आता कि हम इस चरित्रको स्वर्गका कहें, या नरकका, अथवा मर्त्य लोकका। आत्माभिमान स्वर्गका, कृत्य नरकका, और जन्म मर्त्यका। नारी चरितकी अद्भुत सृष्टि है। हां, इसी प्रकारका चित्र द्विजेन्द्र बाबूकी गुलनारमें भी पाया जाता है।

मृगेन्द्रका पुत्र जितेन्द्र एक कार्म्मिष्ठ, दृढ़ प्रतिज्ञ एवं शुद्ध चरित्र युवक है। वह हरिद्वारमें चिदानन्द स्वामीके आश्रममें पढता है। सबसे पहले हम उसे संध्याके समय एक जंगलमें देखते हैं। वह अपने विचारोंमें मग्न है। इतनेमें ही एक हरिणी आकर उसकी विचार शृंखलाका तोड़ देती है। और उसके साथ ही इन्दिरा उसके सम्मुख आ खड़ी होती है। उसे देखते ही उसके श्याम मेघ सदृश हृदयमें सौन्दर्य्य की बिजली चमक जाती है। उसके हृदयकी बेखिली प्रेमकली उसे देखते ही खिल उठती है। उसके शुद्ध हृदयमें तरह २ के मनो विकार जागृत हो उठते

हैं। इधर जैसी हालत है, उससे भी अधिक विचित्र दशा इस समय इन्दिराकी हो रही है। उसके हृदयमें कैसा द्वन्द मच रहा है इसका अनुमान करना कल्पनाका काम है, लेखनीका नहीं। और जिस समय जितेन्द्र बनराजको मारनेके बदले प्रेम पूर्वक खिलाने लगता है। तब तो उसके हृदयका प्रेम श्रोत गैरिक स्रावकी तरह लज्जाके किलेको तोड़कर बहने लग जाता है। उसी समय वह जी जानसे उस पर अनुरक्त हो जाती है। बस इसी घात प्रतिघातमें प्रेमका पौधा उत्पन्न हो जाता है। जो अन्तमें विवाहके रूपमें परिवर्त्तित हो जाता है। लेकिन इतने थोड़े समयमें एक दम बिना जान पहचानके इस प्रकार प्रेमका उत्पन्न हो जाना कुछ अस्वभाविक सा मालूम होता है। अन्तर्युद्धका दृश्य बिलकुल न होनेसे यहां पर एक कमी उपस्थित हो गई है। जितेन्द्रके चरित्रका सबसे उत्कृष्ट पहलू वहां पर दिखाई देता है, जहां पर प्रमिला उससे प्रेम भिक्षा मांगती है। कुछ मनुष्योचित दुर्बलता दिखला कर अन्तमें लेखकने उसे बहुत ही उज्वल रंग दे दिया हैं। सचमुच इस स्थान पर लेखककी लेखनीने पूर्ण स्वाभाविकताके साथ कमाल किया हैं।

राजा मृगेन्द्र एक धर्म भीरू, बीर, एव हिन्दू धर्मका कट्टर अनुयायी है। होनीके फेरमें पड़कर वह बिलकुल बरबाद होगया है प्रमिला-जिसको उसने पुत्रीके समान पाला था—की कृतघ्नता-को देख कर वह पागल हो उठता है। मनुष्यकी इस कृतघ्नताको देखकर वह संसारसे नफ़रत करने लग जाता है, और ईश्वरको इस दुनियाका कर्त्ता समझ कर दोष देने लगता है। सचमुच ही बहुत करुणा जनक स्थिति हैं। इस स्थितिको देखकर विश्वास भी रोउठता है—मनुष्यत्व भी आंसू बहाने लगता है!

हाय! दुनियाकी चालोंसे अनभिज्ञ मृगेन्द्र! तुमने जान बूझ

कर बिषकी बेलमें पानी सींचा, नागिनको दूध पिलाया, कृतघ्नताको पाल पोषकर बड़ा किया। अब पछतानेसे क्या होता है?

इतनेमें ही कहींसे एक सन्यासी आकर उपस्थित होते हैं, वे मृगेन्द्रको ज्ञानोपदेश देते हैं। जिसमें मृगेन्द्र पुनः अपने कर्त्तव्य पथपर आग्रसर होता है। इसका चरित्र चित्रण पूर्ण स्वाभाविकताके साथ व्यक्त किया गया है।

इस नाटकके अन्दर एक दो घटनाएं ऐसी आई हैं, जिन्हें पढ़ते ही पाठक नाटकमें अस्वाभाविकताका दोष लगाने लगेंगे। जैसे सिंहका नम्र रूप धारण करलेना, गर्म तेलका ठण्डा हो जाना, आदि। पर इसमें अस्वाभाविकताकी कल्पना करनेको कोई स्थान नहीं। इस बातको पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि, मनुष्यकी एक ऐसी भी उत्कृष्ट स्थिति हो जाती है जिसके कारण हिंसक पशु भी नम्र रूप धारण कर लेते हैं। अमेरिकाके सुप्रसिद्ध महात्मा थारो इस बातके उदाहरण हैं। गर्म तेलका ठण्डा होना भी कोई आश्चर्य्य नहो। इस गये गुजरे धर्म विहीन समयमें भी हमारे यहां सत्यकी परख करनेके लिए गर्म तेलमेंसे अंगूठी निकाली जाती है। इस लिए ये बातें अस्वाभाविक नहीं कही जा सकतीं।

इसके अतिरिक्त हमें और भी कई बातें कहना थीं। पर समय और स्थानकी संकीर्णताके कारण हम अधिक कुछ भी नहीं कह सके। फिर भी इतना अवश्य कर सकतेहैं, कि स्वर्ग और नरक की झलक दिखाई देने पर भी यह नाटक शुरूसेअन्ततक मनुष्य प्रकृतिके अध्ययनके साथ लिखा गया है। हमें इसे पढ़कर अतीव आनन्द प्राप्त हुआ।

X. Y. Z
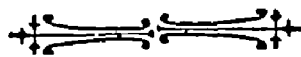
सम्राट्-अशोक

पहला अंक
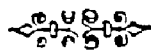
पहला—दृश्य

समय—आधीरात

(सम्राट्—अशोक)

अशोक—कैसा आश्चर्य है ! इन्द्रपुरको घेरे हुए चार मास हो चुके, मगर अभीतक विजयके चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। विजय तो दूर दिनपर दिन हमारी शक्तिका ह्रास होता जा रहा है। कालसे भी अधिक भयङ्कर, और वज्रसे भी अधिक दृढ़ हमारे सैनिकोंको निष्ठुर महामारी अपने ग्रासमें ग्रसती जा रही है। दिन प्रति दिन हमारे हजारों वीर सैनिक कालकी अनन्त शैयापर शयन करते जा रहे हैं। कैसा आश्चर्य है ! मैंने सारे भारतवर्षपर अपनी विजय वैजयन्ती फहराई है। आधीकी तरह हो कर मैंने शत्रुओंकी भारी सेनाओंको धूलकी तरह उड़ा दिया है। होनहारसे भी अधिक अनिवार्य्य, हत्यासे

भी अधिक कराल और महामारीसे भी अधिक निष्ठुर होकर मैं सारे भारतवर्षपर अपनी रुधिराक्त विजय वेरोकटोक निकाल लाया हूं। यदि कहीं बाधा पड़ी है तो इसी इन्द्रपुरके छोटेसे टुकड़ेमें। ....मोहन!

(मोहनका प्रवेश और अभिवादन करना)

मोहन—भगवन्! क्या आज्ञा है?

अशोक—आर्य्य राधागुप्तके डेरेमें जाकर यदि वे जग रहे हों तो उनसे निवेदन करना कि, सम्राट् आपको याद कर रहे हैं।

मोहन—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

अशोक—क्या कारण है? मैं सारे भारतवर्षको जीतनेवाला चक्रवर्तीसम्राट्, और राजा मृगेन्द्र एक छोटासा नरपति! उसको पराजित करनेमें इतनी कठिनाई क्यों? (सोचता हैं)

(सोचकर) ठीक है! अवश्य इसका कोई गूढ़ कारण है। वह है धर्मकी रक्षा। राजा मृगेन्द्र सर्वतोभावसे धर्म पर दृढ़ है वह कट्टर हिन्दूधर्मावलम्बी है और मैं? मैं भगवान बुद्धका अनुयायी होकर उनके उस पवित्र सिद्धान्तसे फिसल करके कितना पतित हो गया हूं। जिस धर्मका मूल मन्त्र अहिंसा है जिस धर्मकी पवित्र नींव विश्व प्रेम पर स्थिति की गई हैं। जो धर्म आकाशकी तरह उन्मुक्त, ईश्वरीय करुणाकी तरह सदय, और भागीरथीकी धाराकी भांति पवित्र है। जो धर्म मनुष्यत्वसे भी अधिक महत् और मातृत्वसे भी अधिक पवित्र है उसी धर्मका उपासक होकर आज मैं यह क्या कर रहा हूं!

जिस धर्मका पवित्र और करुणामय प्रकाश मनुष्य तो क्या पशुपक्षियोंपर भी अबाधित रूपसे पड़कर उन्हें सजीव बना देता है—जिस धर्मकी शीतल किरणें प्रत्येक प्राणीपर पड़कर उसे चमका देती है, उसी पवित्र धर्मका प्रचार आज तलवारके जोरसे खूनकी नदियां बहाकर किया जा रहा है। क्या इसका कुछ प्रतिकार नहीं है।

(मन्त्री राधागुप्तका प्रवेश)

अशोक—आर्य्य! आइए, अशोक सेवामें अभिवादन करता है।

राधा गुप्त—भगवन्! आज आप किस चिन्तामें डूब रहे हैं? रात आधीसे अधिक जा चुकी है। अभीतक आपने शयन नहीं किया?

अशोक—आर्य्य! इस स्थितिमें निद्रा कैसे आ सक्ती हैं? क्या आप जानते हैं कि, अशोकके हृदयसागरमें इस समय कैसा तूफ़ान उठ रहा है?

राधागुप्त—भगवन्! जानता हूं—समझता हूं—अनुभव करता हूं—जो दारुण ज्वाला इस समय सम्राट्के हृदयको दग्ध कर रही है। उससे भी अधिक भयङ्कर और निष्ठुर कालाग्नि इस वृद्ध हृदयमें धधक रही है। पर कोई उपाय नहीं है। भगवन्! मैंने हत्या राक्षसीका वह भयानक व्यापार अपनी आखोंसे देखा; प्रलयका वह सजीव एवं दारुण दृश्य अब भी दृष्टिके आगे नृत्य कर रहा है। हाय! उस दृश्यको देखनेके पूर्व ही मैं अन्धा क्यों न हो गया? शरीरके अन्दर अब वह तेज नहीं है, नहीं तो

इन्द्रपुरके मैदानमें राधा गुप्त की तलवारने अब तक शत्रुओंका ध्वंस कर दिया होता।

अशोक—बस आर्य्य! बहुत हो चुका। अब ये सान्त्वनाके शब्द निःसार प्रतीत होते हैं। हाय! आज हमारे वे प्रिय सैनिक जिन्होंने कई युद्धोंमें हमारी प्राणरक्षा की है, कालके गालमें चले जा रहे हैं। भगवान् बुद्धके अहिंसा शब्दका क्या यही अर्थ है? जिन महात्माने सारे संसारको साम्यवादका पवित्र संदेशा सुनाया है, उन्हींके उपासक होकर आज हम दूसरोंको गुलाम बनानेके निमित्त, हजारों मनुष्योंका बलिदान कर रहे हैं। उसी प्रेममय धर्मका प्रचार करनेके निमित्त हम तलवारसे काम ले रहे हैं।

(राधागुप्त सिर नीचा किये हुए बैठे रहते हैं)

अशोक—कहिए मन्त्रीजी! बोलते क्यों नहीं हैं? चुप क्यों हो रहे हैं? क्या आप चाहते हैं कि, इस दानवी लीलाको इसी प्रकार चलने दिया जाय? क्या आप चाहते हैं कि, धर्म प्रचारकी आड़में इसी प्रकार नित्य प्रति हजारों मनुष्य मृत्युके मुखमें ठेल दिये जांय?

राधागुप्त—भगवन्! क्षमा कीजिए, इस समय आप मुझे स्पष्ट कथनके लिये प्रेरित न करें।

अशोक—क्यों क्या कारण है? आर्य्य! इस द्वेष पूरित वायु मण्डलमें मैं केवल आपको ही अपना हितू समझता हूं। और प्रत्येक कार्य्यमें आपकी सलाहकी अपेक्षा करता हूं।

राधागुप्त—भगवन्‌का यह असीम अनुग्रह है कि बौद्ध होते हुए भी मुझ जैसे कट्टर हिन्दू धर्मावलम्बी पर आप इतना विश्वास रखते हैं। भगवन्! तो फिर सुनिए, स्पष्ट शब्दोंमें मैं कह सकता हूं कि अशोकका काम केवल युद्ध करना है। दूसरे मामलोंमें उनकी राय आपेक्ष्य नहीं।

अशोक—मन्त्रीजी! आपके कथनका मर्म कुछ भी समझ-में नहीं आया। क्या मैं पाटलिपुत्रका अभिषिक्त राजा नहीं हूं?

राधा—चाहे हों। उससे क्या? सारे राजसूत्र तो इस समय बौद्ध भिक्षुओंके हाथमें हैं। बिना उनकी इच्छाके पत्ता भी नहीं खडकता।

अशोक—ठीक है, अब समझा। मैं अभीतक संसारमें एक उदासीनकी तरह रह रहा हूं। इसीसे बौद्धभिक्षुराज्यमें मन-माना शासन कर रहे हैं। पर मन्त्रीजी! अब सहन नहीं होता। आप शीघ्रही कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे यह राक्षसी व्यापार एकदम रुक जाय। अब अशोकका प्रतिकार कोई नहीं कर सकेगा।

राधागुप्त—(नीचा सिर करके) भगवन्! क्या उपाय बत-लाऊं? राधागुप्तकी जबान उस उपायको बतलानेमें सर्वथा असमर्थ है। अभीतक मैंने क्या भगवन् बिन्दुसारको, और क्या आपको केवल विजयकी बधाइयां ही दी है। दूसरा उपाय बता-नेका अवसर अभीतक नहीं आया।

अशोक—आर्य्य! मेरे जीवनमें भी यह पहलाही अवसर है,

जिसमें कि, मैं अपने आपको इतना निर्बल अनुभव कर रहा हूं। पर क्या किया जाय, यह नित्यका हत्याकाण्ड अब नहीं देखा जाता। जहांतक हो, इसके प्रतिरोधका कोई उपाय शीघ्र बतलाइए।

राधागुप्त—(कम्पित स्वरसे) भगवन्! क्या कहूं। इस समय सन्धिके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं।

अशोक—ठीक है। मैं भी यही सोच रहा हूं। पर क्या मृगेन्द्र बराबरीकी सन्धि करनेपर उद्यत हो जायगा?

राधागुप्त—भगवन्! मृगेन्द्र इतना अनुदार राजा नहीं है। वह एक उदार हिन्दू नरपति है। धर्मको प्राणोंसे भी बढ़कर चाहनेवाला है। यदि वह समझ लेगा कि, इस सन्धिसे मेरी धर्मरक्षा पूरी तौरसे हो रही है तो फिर वह उसे करनेमें तनिक भी आनाकानी न करेगा। हां, धर्मकी हानिको वह रंचमात्र भी सहन नहीं कर सकता।

अशोक—ठीक है तो फिर प्रातःकाल ही सन्धिका पैगाम भेज दिया जाय।

राधागुप्त—भगवन्! कलका दिन और ठहर जाइए। राजमाता बुद्धिमती और भिक्षु सम्पुष्टाचार्य्यसे भी इस विषयमें सलाह कर लेना उचित है।

अशोक— आर्य्य! अब उन लोगोंकी सलाह लेना मैं उचित नही समझता। इस भयङ्कर नरहत्याको देखनेकी शक्ति अब मुझमें नहीं है।

राधागुप्त—भगवन्! कल आप उनसे सलाह मिला लीजिये, यदि वे आपके पक्षमें ही राय दें, तब तो व्यर्थ ही वितण्डावाद बढ़ानेसे क्या लाभ? नहीं तो फिर जैसी आपकी राय हो वैसा कीजिये।

(नेपथ्यमें—भिक्षुश्रेष्ठ सम्पुष्टाचार्य्यकी जय।)

अशोक—जान पड़ता है स्वयं सम्पुष्टाचार्य्य इधरको आ रहे हैं। उनकी राय इसी समय मालूम हो जायगी।

राधागुप्त—अच्छा तो भगवन्! अब मुझे आज्ञा दीजिये। यदि वह मुझे यहां देखेगा तो व्यर्थ जल भुनकर खाक हो जायगा। इसलिये मेरा इस समय यहां न रहना ही अच्छा है। (प्रस्थान)

(बुर्का डाले हुए एक स्त्रीके साथ सम्पुष्टाचार्य्यका प्रवेश ;

(सम्पुष्टा० दोनों हाथ उठाकर, धर्मवृद्धि!)

(अशोक अभिवादन करके उच्चासन देते हैं, स्त्री भी एक आसनपर बैठती है।)

अशोक—कहिए भिक्षुश्रेष्ठ! इतनी रात्रिको कैसे आगमन हुआ?

सम्पुष्टा—ऐसे ही सम्राट्को देखने चला आया।

अशोक—अस्तु! अच्छे ही अवसरपर आपका आगमन हुआ। मैं भी आप ही के विषयमें सोच रहा था।

सम्पुष्टा—कहिये क्या बात है?

अशोक—बात आपसे छिपी नहीं है। आप देख रहे है आज

चार माससे हम बराबर यहांपर पड़े हुए हैं। दिन प्रतिदिन हमारे हजारों वीरोंका संहार हो रहा है। फिर भी विजयके चिह्न नजर नहीं आते। इसलिये अब मैंने निश्चय कर लिया है कि जितना शीघ्र हो सके, राजा मृगेन्द्रसे सन्धि कर ली जाय और भविष्यमें धर्मप्रचारके निमित्त कभी तलवार न उठाई जाय।

सम्पुष्टा—भगवान्! गौतमबुद्धके आदेशानुसार उनके धर्मका प्रचार करना ही हम लोगोंका कर्तव्य है।

अशोक—भगवानका यह आदेश कदापि नहीं है कि तलवारके जोरसे डर दिखाकर, या धमकाकर उनके पवित्र धर्मका प्रचार किया जाय। इस धर्मका मूलतत्व अहिंसा है और इसका प्रचार केवल प्रेमभावसे करना ही भगवान्का उद्देश्य है।

संम्पुष्टा—सम्राट्! आज आप ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं। इतने दिनोंसे जिस राहसे आप चले आ रहे हैं, उसी राहसे चलनेमें हिचकना आपके समान वीर पुरुषोंको शोभा नहीं देता।

अशोक—अभी तो आप धर्मप्रचारकी आड ले रहे थे, अब आप वीर धर्मका उपदेश देने लगे! भिक्षुश्रेष्ठ स्वार्थसे प्रेरित हो हजारों मनुष्योंका संहार करा देनेको वीरता नहीं कहते। आप कृपया शीघ्र ही अपनी सम्मति प्रदर्शित कीजिये।

सपुष्टा—(स्वगत) इस समय अधिक खींचनेसे बात बिगड जायगी। (प्रगट) सम्राट्! मैं आपसे केवल दो दिनका समय चाहता हूं। इतने समयमें यदि कालिंगविजय हो जाय तो ठीक, अन्यथा फिर आपकी जैसी इच्छा हो करें।

अशोक—इससे क्या लाभ ? क्या आप समझते हैं कि, जो कार्य्य हमारे वीर चार मासमें भी न कर सके, वह केवल दो ही दिनमें हो जायगा। तिसपर भी विशेषता यह कि इस समय हमारी केवल चौथाई सेना शेष है।

सम्पुष्टा—(रमणीकी ओर एक बार देखकर) हो जायगा। अवश्य हो जायगा। सम्राट आश्चर्य्यपूर्वक देखेंगे कि चार मासमें न होनेवाला कार्य्य किस प्रकार दो दिनमें सम्पन्न होता है

अशोक—अच्छी बात है। दो दिन और सही पर उसके पश्चात् मैं किसी तरह भी न ठहर सकूंगा।

सम्पुष्टा—सम्राट्को जय हो।

(प्रस्थान-पटाक्षेप)

दूसरा—दृश्य

स्थान—विशाखानन्दका मकान

(प्रमिला)

गीत:—

तर्ज – बदजात रानी पिंगला।

किस तरह हीरा चमक अपनी दिखायगा।
साम्राज्य अन्धकार का जब फैल जायगा॥

ताकत कहो क्या ! फूलकी रंगीन रह सके।
कातिल कोई जब वर्फ पर उसको लगायगा ॥
कोकिल कभी क्या ! काकली अपनी सुनासके।
ऋतुराजही जब वक्त पर आने न पायगा ॥

प्रमिला—ओफ ! कैसी यन्त्रणा है ? यह मेरी जय है या पराजय ? बुड्ढे मन्त्री विशाखानन्दकी पत्नी प्रमिला ! तीनपन बीते हुए बुड्ढेको अर्द्धाङ्गिनी एक लहराती हुई जवानीकी उमङ्गसे उमङ्गित तरुणी !! कैसी जोड़ है ? पर मृगेन्द्र ! याद रखना तुझसे इसका वदला तिल तिल करके चुकाऊंगी। तू देखेगा कि प्रमिला केवल कोमलहृदया नारी ही नहीं है, वह एक प्रतिहिंसाकी प्रतिमूर्त्ति है। दारुण पिशाची है ! (दांत पीसकर) मृगेन्द्र ! मृगेन्द्र !! तुझे यदि तडफा तड़फाकर न मारा तो मेरा नारी जीवन ही व्यर्थ है। जिस समय मैंने तुझसे जितेन्द्रके साथ अपने विवाहका प्रस्ताव किया, उस समय तूने उपेक्षासे हंस दिया, पर स्मरण रखना, मृगेन्द्र ! महत्वाकांक्षिणी प्रमिलाने उसीका वदला लेनेके निमित्त इस बुड्ढे लटे हुए विशाखानन्दसे विवाह किया है। इसीके जरिये मैं वह कार्य्य निकालूंगी, जिसे देखकर संसार चकित हो जायगा।

(विशाखानन्दका प्रवेश)

प्रमिला—आइये प्राणेश्वर ! मेरे हृदय मन्दिरके दीपक ! मेरी मनोवाटिकाके गुलाव !! (हाथ पकड़ लेती है।)

विशाखानन्द—प्रमिला तुम मुझ बुड्ढेसे इतना प्रेम क्यों

करती हो ? मेरे तीन पन तो बीत चुके। इस अस्सी बरसकी अवस्थामें तुम्हारे प्रेमका बदला कैसे चुका सकता हू ?

प्रमिला—प्यारे ! आप ऐसी बातें करके क्यों मेरे चित्तको घायल करते हैं। आपके समान तरुण पुरुष प्रमिलाकी दृष्टिमें इस संसारमें कोई नहीं। स्वयं कामदेवके समान सुन्दर, वसन्तके समान युवा, सागरके समान लहरयुक्त, आपके समान दूसरा स्वामी कहां मिल सकता है ? न मालूम कितने जन्मोंकी तपस्याके फलस्वरूप आप मुझे प्राप्त हुए हैं।

विशाखा—प्रमिला ! क्या कहूं, मैंने अभी तक सात विवाह किये, लेकिन उनमेंसे एक भी तुम्हारे समान सरलहृदया और प्रेमिका न मिली। जब हृदयसागरके अन्तर्गत यौवनकी चञ्चल तरगें उठा करती थीं, जब यह छिटकी हुई चान्दनी प्रेमिकाके मधुर हास्यकी तरह, और ये नक्षत्र वासनाकी चिनगारियोंकी तरह मालूम होते थे। जब ये गुलाबके फूलके हृदयके रक्तके समान और कोकिलका गान एक स्मृतिकासा जान पडता था ; जब प्रणयीका दर्शन उषाका उदय, चुम्बन सजल बिजली की चमक और आलिंगन आत्माका प्रलय जान पडता था, उस समय तुम मुझे न मिली, प्रमिला ! यही दुःख है। जो कुछ सचित था वह मैं दे चुका, तुम्हारे लिये अब कुछ भी शेष नहीं है। अब वह उत्साह नहीं है, चञ्चलता नही है। यदि शेष है तो केवल वृद्धावस्थाका दारुण उच्छ्वास ! मृत्युका किल्लोलमय नृत्य ! प्रमिला ! मैं तुम्हें सुखी नहीं कर सका।

प्रमिला—प्रियतम ! आप इतने दुःखी क्यों होते हैं। जो कुछ आपके पास शेष है वही प्रमिलाके लिये बहुत है। सती रमणीके लिये पति ही सब कुछ है। वही उसके हृदयमन्दिरका उपास्य देवता, और मानसिक जगत्‌का सम्राट् है। केवल विलासमें डूबी हुई कामिनियां ही बाहरी विलाससामग्री एवं क्षणिक यौवनपर मुग्ध होती हैं। वास्तविक साध्वी स्त्रियां इस ओर ध्यान नहीं देतीं। वे तो अन्तर्जगत्‌के रमणीय उद्यानमें उसकी स्थापना करती हैं।

विशाखा—प्रमिला ! तुम साक्षात् सतीत्वकी प्रतिमूर्त्ति हो !

प्रमिला—(कांपते हुए स्वरसे) पर यदि कोई पापी बलात्कार उस सतीत्वमें कलंक लगानेकी चेष्टा करे, यदि कोई नरकका कीड़ा जबर्दस्ती उस निर्मल सरोवरको गन्दा करनेकी कोशिश करे ?

विशाखा—(चौंककर) ऐं ! यह क्या कह रही हो प्रमिला ! क्या तुम होशमें नहीं हो ?

प्रमिला—(गलेमें हाथ डालकर) मेरेनाथ ! क्या कहूं ? मुझे किस प्रकार प्रलोभनोंका इन्द्रजाल दिखलाया जा रहा है ? पर... ना, मैं वह कहानी अब न कहूंगी। उस कहानीके एक एक अक्षरमें पापका समुद्र लहरा रहा है। उसकी एक एक पंक्तिमें शैतानकी जीवनी लिखी हुई है। ना, उस कहानीको कहकर अब मैं अपने देवतातुल्य स्वामीका दिल न दुखाऊंगी। प्रमिलाके भाग्यमें जो कुछ होगा, देखा जायगा।

विशाखा—प्रमिला! तुम्हें मेरे सिरकी शपथ, यदि यह बात तुमने मुझसे न कही।

प्रमिला—स्वामी! तुमने यह क्या किया? अब प्रमिलाको कहनेके सिवा दूसरा रास्ता नहीं, यदि कहूं तो सुनते ही आगकी लौपर छोडे हुए कोमल पत्तेकी तरह तुम झुलस जाओगे।—सुनते ही गर्मबालूमें पड़ी हुई मछलीकी भांति तड़फड़ाने लगोगे। हाय भगवान्! प्रमिलाके भाग्यमें क्या बदा है? (रोना)

विशाखा—(आवेशमें) प्रमिला! रोती क्यों हो? किसने तुम्हारे समान् साध्वी स्त्रीके हृदय पर चोट पहुंचाकर अपनी मृत्युको निमन्त्रण दिया है? किसने जान बूझकर शेरकी माद्में हाथ डाला है? शीघ्र कहो, जरा उस दुष्टका नाम तो सुनूं।

प्रमिला—रहने दीजिये मेरे आराध्यदेवता! उस नामको सुनते ही आप विषादके गहरे सागरमें गोते खाने लगेंगे। उस नामको सुनते ही आपके रोम रोममें सनसनी छा जायगी। उसका प्रतिकार तो दूर रहा, उसका नाम सुनते ही उलटे आप मुझपर अविश्वास करने लगेंगे। इसलिए उस नामको जबान पर न लाना ही अच्छा है।

विशाखा—प्रमिला! क्या तुम मेरी शक्तिसे परिचित नहीं हो? इस समय सारा कलिंग देश बुड्ढे विशाखानंदकी उंगलीके इशारे पर नाच रहा है। कलिंग ही क्या, इस समय सारे भारत-वर्षपर उसका प्रभाव अबाधित रूपसे जमा हुआ है।

प्रमिला—चाहे आपका प्रभाव सारे संसारपर अबाधित

रूपसे जम रहा हो, पर वह व्यक्ति आपके प्रभावकी सृष्टिसे बिलकुल बाहर है। उस नामको सुनते ही आप विस्मयसागरमें उतराने लगेंगे। उस नामको सुनते ही अविश्वासकी आंधी आपको उड़ाकर भ्रमके जालमें डाल देगी।

विशाखा—प्रमिला! मैं तुमपर विश्वास करता हूं।

प्रमिला—ना, बिलकुल झूठ है, तुम राजनीतिज्ञ हो!

विशाखा—प्रमिला! मैं इस प्रासादके बाहर चाहे कितना ही बड़ा राजनीतिज्ञ क्यों न होऊं, पर यहांपर मेरी उस राजनीतिज्ञताका कुछ मूल्य नहीं। मैं तुमपर पूरा विश्वास करता हूं, तुम अपनी आत्मकहानी मुझसे कहो।

प्रमिला—तो आप मुझपर विश्वास करेंगे?

विशाखा—अवश्य करूंगा।

प्रमिला—तो सुनिए, मेरे सतीत्वमें कलंक लगानेवाला वह नरपिशाच राजा मृगेन्द्रके सिवा दूसरा कोई नहीं।

विशाखा—(चौंककर खड़े हो जाते हैं) क्या कहा? सुनाई नहीं पड़ा! फिरसे कहना तो?

प्रमिला—(दृढ़तासे) "राजा मृगेन्द्र।"

विशाखा—झूठ! बिलकुल झूठ! यदि यह सत्य है तो फिर कहो कि, चन्द्रमा अंगारे बरसाता है, सूरज अंधकार करता है, आग शीतल करती है! यदि यह सत्य है तो फिर कहो कि, माता विश्वासघात करती है, पिता कृतघ्न होता है, समुद्र मर्यादाको छोड़ देता है। यदि यह सत्य है तो फिर कहो कि, प्रेमी कृतघ्न

होता है, धर्मी पाखण्डी होता है। सुन्दरी असती होती है। नहीं प्रमिला ! यह बिलकुल झूठ है। अभी भी इस संसारमें धर्म विश्वासघातका गला दबाये हुए, अबाधित रूपसे शासन कर रहा है। अभी भी सूर्य्य और चन्द्रमा नियमितरूपसे अपनी कक्षामें घूमते हैं। अभी भी माता अपनी सन्तानके लिए और धर्मी अपने धर्मके लिए प्राण न्योछावर करनेको तैयार है। प्रमिला ! यह असम्भव है।

प्रमिला—मैं तो पहले ही कह चुकी थी कि, आप उस बात पर विश्वास न करेंगे। मैं जानती हूं कि, निर्बलका सहायक भगवान्के सिवा कोई दूसरा नहीं होता। फिर भी आपके विशेष आग्रहमें आकर मैंने वह कलंककहानी आपको सुनाई। लेकिन मुझपर आपने विश्वास नहीं किया। कोई दुःख नहीं है, प्रभो! आप सुख पूर्वक राजा मृगेन्द्रकी दी हुई रोटियोंपर आनन्द कीजिए। प्रमिला अपनी रक्षा आप कर लेगी।

(आवेशमें) भगवति वसुन्धरे ! फटकर दोटूक हो जाओ, जिसमें मैं तुम्हारी गोदमें समा जाऊं! ऐ आकाशके वज्र ! प्रमिलाके सिरपर टूट पड़ और उसके दुखोंका अन्त कर दे। (कुछ ठहरकर) कुछ नहीं हुआ, कलियुग ही तो है। खैर, तो फिर प्रमिलाकी रक्षा करनेवाला इस दुनियांमें इस छुरेके सिवा कोई नहीं है। तो फिर वही हो (छुरा निकालकर) उज्वल चन्द्रमा ! आकाशमें अपना मुंह छिपाले। नक्षत्रो ! बुझ जाओ ! सृष्टि!

निद्रामग्न होजा ! प्रमिलाकी इस कथाको कहनेवाला दुनियामें कोई न रहे। (छुरा तानती है)

(विशाखानन्द दौड़कर हाथ पकड़ लेते हैं)

विशाखा—प्रमिला ! शान्त होओ, इतनी क्रुद्ध न होओ। नहीं तो तुम्हारे मुखसे निकले हुए श्वासकी गर्मीसे दुनियां भस्म हो जायगी।

प्रमिला—ना, अब मुझे न रोकिए, मुझे यह जीवन अब अच्छा नहीं लगता। मैं प्राणोंके बदलेमें सतीत्वको नहीं बेच सकी। हां, यदि हो सकेगा तो प्राण देकर सतीत्वकी रक्षा करूंगी। हाय ! क्या कहूं स्वामी ! जब वह कुलांगार आकर मुझे "प्रेयसी" इस शब्दसे सम्बोधित करता है, तब हृदयमें कैसी असह्य जलन होती है। उस जलनके सम्मुख घाव पर डाले हुए नमककी जलन, चन्दनके लेपके समान मालूम होती है। उस जलनके सम्मुख नरककी भीषण ज्वाला मलयपवनके समान शीतल मालूम होती है। पर ना, जाने दो, उस कलंककहानीके कहनेसे लाभ ही क्या ? अच्छा तो प्रभु ! अब मैं उस कलंक कहानीको साथ लिये जाती हूं। (ऊपरको देखकर) भगवन् ! यदि मैंने इस जन्ममें कोई पुण्यकार्य्य किया हो तो, जन्म २ में मुझे इनके समान ही पति मिले।

विशाखा—प्रमिला ! ठहरो, इतनी दुःखित मत होओ। मैं तुम्हारे अभियोगका विचार करूंगा, फिर चाहे उसका अभियुक्त राजा मृगेन्द्र ही क्यों नहो !

प्रमिला—प्रभो ! अब समय नहीं है, आज ही की रात्रि वह काल रात्रि है, जिस दिन यह कलंकव्यापार घटनेवाला है। अब वह नीच आता ही होगा। यातो आप मेरी रक्षाका वचन दीजिए, या मुझे अपनी रक्षा आप करने दीजिए।

विशाखा—प्रमिला ! इतना शीघ्र कौनसा उपाय किया जा सकता है ?

प्रमिला—इसी बल पर राज्यके मंत्री बने हुए हो ? इसी बल पर सारे भारतवर्षमें प्रभाव जमानेकी डींग हांक रहे हो ? धिक्कार है, तुम्हारी उस शक्तिको, जिसके बलसे तुम अपनी स्त्रीके सतीत्व की रक्षा भी नहीं कर सकते। धिक्कार है, तुम्हारे उस वैभवको, जिसके बलसे तुम एक कुलांगनाकी इज्जत भी नहीं बचा सकते। जाने दीजिए प्रभो ! आप क्यों कष्ट कर रहे हैं। मैं तो खुद अपनी रक्षा कर सकती हूं। असल बात यह है स्वामी ! तुम मुझे नहीं चाहते, केवल मुंह दिखौआ प्रेम करते हो। यदि ऐसा न होता तो क्या अब तक आपको गुप्त द्वारकी तालियोंकी याद न आती ?

विशाखा—(सिरसे पैरतक कांपकर) क्या कहा ? गुप्त द्वार की तालियें ? प्रमिला ! इससे भारी अनर्थ हो जायगा। एक मनुष्यके पापसे सारे कलिंग देशका विध्वंस हो जायगा।

प्रमिला—पर क्या किया जाय ? कोई उपाय नहीं है। सीताके अपमानने ही स्वर्णपुरी लङ्काका विध्वंस करवाया, द्रौपदीके अपमानने ही वह महाभारत करवाया, जिससे सारा

भारत गारत हो गया, स्वामी! यह सतीका शाप है यह इन्द्र-धनुषका रंग नहीं है, यह कामीका प्रलाप नहीं है।

(नेपथ्यमें—"प्रमिला")

प्रमिला—(शीघ्रता पूर्वक) देखिए वह कुलांगार आ पहुंचा। अब यदि आपको मुझसे कुछ प्रेम है, तो इसी समय गुप्तद्वारकी तालियें मेरे सुपूर्द कीजिए अन्यथा मुझे मरने दीजिए।

(विशाखानन्द बड़े ही खिन्न भावसे तालियें देता है।)

प्रमिला—(प्रसन्नता पूर्वक तालियें लेकर) प्रभो, वास्तवमें आप मुझ पर प्रेम करते हैं। अब यदि आपको विश्वास न हो तो इस खिड़कीमें बैठकर चुपचाप देखिए कि मृगेन्द्र मेरे साथ कैसा असभ्य व्यवहार करता है।

(प्रस्थान)

विशाखा—(सूखी हंसी हंसकर) यह भी एक पहेली है। यह सुन्दरी कोमलहृदया रमणी तो मालूम नहीं होती, यह तो एक विलासवती तरुणी मालूम हो रही है। यह सूर्यकी तरह प्रकाशित तो करती है, पर चन्द्रमाकी तरह शीतल नहीं करती, जलाती है। इसके प्रेममें एक अधिकारका अस्पष्ट भाव झलकता है! हाय, मैंने यह क्या किया, इस विलासवती तरुणीके निठुर हाथमें कलिंग देशके भाग्यकी कुंजी दे दी! धिक्कार है विशाखानन्दकी राजनीतिज्ञताको!

(पटाक्षेप)

तीसरा—दृश्य

(विशाखानन्द ऊपरसे एक चिक लगी हुई खिड़की की आड़से देख रहे हैं। नीचे प्रमिला और मृगेन्द्र बहुत ही धीरे २ बातें कर रहे हैं)

मृगेन्द्र—प्रमिला बेटी! आज कल तुम ऐसी दुःखित क्यों रहती हो? तुम अपने दु खका कारण मुझसे कहो। मैं यथा-साध्य उसे दूर करनेकी चेष्टा करूंगा। तुम्हें दुःखी देखकर मेरी छाती विदीर्ण होती है।

प्रमिला—पिताजी! क्या मेरे भाग्यमें यही बदा था?

(रोती हैं।)

मृगेन्द्र—(खींचकर छातीसे लगा लेता हैं, यह देख कर ऊपर से विशाखानन्द क्रोध और घृणाका नाट्य करता है) बेटी! रोओ मत। मुझे अपने दु.खकी कथा कहो।

प्रमिला—(और भी करुण स्वरसे रोकर) पिताजी! आपकी आज्ञा न मानकर मैंने मन्त्रीजीसे विवाह क्या करलिया, बड़ी आफ़त मोल लेली। हाय! आज वही स्वामी मेरे शीलमें बड़ा भारी धब्बा लगा रहे हैं। सो भी किसी ऐसे वैसेके साथ नहीं, स्वयं आपके साथ! हाय भगवान्! कैसी विड़म्बना है!

मृगेन्द्र—(चौंककर) क्या मेरे साथ! तब तो मन्त्री जी! वास्तव में तुम्हारी बुद्धि मारी गई है। ओफ़! इतने बड़े विज्ञ मंत्री होकर इतना भी नहीं समझते कि जिसे मैंने लड़कीकी तरह पाल-

पोष कर बड़ा किया है, उसीके साथ मैं यह निन्द्य आचरण करूंगा। (प्रमिलाका हाथ पकड़ कर) बेटी! तू दुःखी मत हो। मैं शीघ्र ही ऐसा उपाय करूंगा, जिससे बहुत ही शीघ्र मंत्रीजीके हृदयका यह नाशक सन्देह दूर हो जाय।

प्रमिला—तो आप करेंगे न?

मृगेन्द्र—हां, जरूर करूंगा। बेटी! अब मैं जाता हूं, इस समय मैं कहीं नहीं जाया करता। पर जब तुमने मुझे आधी-रातको बुलाया तो किसी जरूरी कार्य्यकी आशंकासे चला आया। अच्छा तो अब मैं जाता हूं। (प्रस्थान)

प्रमिला—(ऊपर देखकर) देख लिया नाथ?

विशाखा—देख लिया! देख लिया!! (उन्मत्तकी तरह) ओ जगदीश! तेरी इस सृष्टिको सम्भाल! सूर्य्य! अन्धकारमें लीन होजा! चन्द्रमा! अपने तेजसे संसारको भस्म कर डाल। आंधी! भीमवेगसे गर्जकर आ, और इस पापके कारखानेको उड़ा लेजा। मृगेन्द्र! ओ धर्मात्माके वेशमें छिपी हुई पाप मूर्त्ति, अपने पापका नतीजा भोग! ऐ कलिंगदेश, जा इस पापके बदले में तू भी गुलामीका कङ्कन पहन। और ऐ होनीके फेरमें पड़े हुए विशाखानन्द! तू प्रेतमूर्ति होकर इस स्मशानमें किल्लोल मय नृत्य कर! (मूर्च्छित हो जाते हैं)

प्रमिला—(भयङ्कर अट्टहास करके) मृगेन्द्र एक, विशाखानन्द दो, हुए समाप्त। अब तीसरे नम्बरमें, चिदानन्दगोस्वामी चौथेमे स्वयं अशोक। प्रमिला! अब यदि मनुष्यत्व छोड़ा है

तो पूरी तौरसे पिशाची बन और अपने सर्वग्रासमें सबको ग्रसले।

(पटाक्षेप)

चौथा-दृश्य
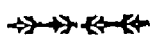
समय—पिछली रात

स्थान—मृगेन्द्रका प्रधान कमरा

(राजा मृगेन्द्र)

मृगेन्द्र—विशाखानन्द! तुम्हारी मतिमें क्या भ्रम हो गया? वृद्धराजनीतिज्ञ! कालिग देशके प्रधान मन्त्री! सन्देह करनेसे पूर्व जरा एक बार सोचते तो सही। मृगेन्द्रका प्रमिलाके साथ अनुचित सम्बन्ध! सुननेके पूर्व यदि आकाश फट पडता तो भी इतना आश्चर्य और दुःख न होता। पिताका पुत्रीके साथ अनुचित सम्बन्ध! हाय, कैसा अत्याचार है! मन्त्रीजी! तुम्हारी मति बिलकुल भ्रष्ट हो गई।

(एक गुप्तचरका प्रवेश)

गुप्तचर—भगवन्! एक नया समाचार हैं। इसीलिये इतनी रातको मैं भगवन्‌को कष्ट दे रहा हूं।

मृगेन्द्र—कहो क्या समाचार है?

गुप्तचर—सम्राट् अशोकने चार मासके युद्धसे घबराकर

भगवन्‌से:सन्धि करनेका निश्चय कर लिया है। सम्भव है, आज ही सवेरे उनका दूत संधिका प्रस्ताव लेकर सेवामें उपस्थित हो जायगा।

मृगेन्द्र—(बहुत प्रसन्न होकर)-क्या सचमुच सम्राट् संधिका प्रस्ताव भेज रहे हैं?

गुप्तचर—बिलकुल सच है, भगवन्।

मृगेन्द्र—(पांच मुद्रा पारितोषिक देकर) अच्छा जाओ। (गुप्तचरका प्रस्थान) क्या यह सत्य है। यदि यह सत्य है तब तो अवश्य ही सम्राट् अशोकके समान उदार महापुरुषसे मित्रताका सम्बन्ध हो जायगा।

(स्वामी चिदानन्दका प्रवेश)

चिदानन्द—मृगेन्द्र, क्या सोच रहे हो? शीघ्रता पूर्वक सुनो, एक आवश्यकीय बात कहने आया हूं।

मृगेन्द्र—(चौंककर) ओह! कौन स्वामी चिदानन्द जी महाराज। भगवन्, पधारिये! दर्शन कर मृगेन्द्र पवित्र हुआ। आपका दर्शन तीर्थदर्शनसे भी अधिक महत्, गङ्गास्नानसे भी अधिक पवित्र, और माताके आशीर्वादसे भी अधिक कल्याणकर है। महात्मन्! आपका यहां पर एकाएक कैसे आगमन हुआ। (आसन छोड़ देते हैं)

चिदानन्द—मृगेन्द्र! इन सब बातोंका उत्तर देनेके लिये मेरे पास समय नहीं है। मैं एक बहुत ही आवश्यकीय कार्यके लिए आया हूं। तुम इसी समय महारानी इन्दुमती और राज-

कन्या प्रणयिनीको किसी विश्वासपात्र मनुष्यके साथ इन्द्रपुरसे निकाल कर हरिद्वारकी ओर भेज दो; और स्वयं भी अपनी रक्षाका प्रबन्ध करो।

मृगेन्द्र–महात्मन्! यह आप क्या कह रहे हैं? कुछ समझ नहीं पडता। सुनकर मैं तो आश्चर्यान्वित हो रहा हूं। वह कौनसी चिन्ता है, जो इस समय आपके पवित्र हृदयमें व्याप्त हो रही है।

चिदानन्द—(लम्बी सांस लेकर) पहले मैंने जो बातें कहीं उनका बहुत शीघ्र प्रबन्ध करके मेरे पास आओ। तब दूसरा प्रश्न करना। (मृगेन्द्रका अन्यमनस्कभावसे प्रस्थान)

चिदानन्द—प्रमिला! राक्षसी प्रमिला! तूने अपनी कुटिल-नीतिके फेरमें बुड्ढे विशाखानन्दको डालकर कलिंगदेशका सर्वनाश करवा डाला! पिशाची! महत्वाकांक्षाके फेरमें पड़कर तू मृगेन्द्रको, और उसके साथ हिन्दूधर्मको भी लोप कर देना चाहती है। पर तेरे किये कुछ नहीं हो सकता। तेरे समान क्षुद्र लड़कियां ही जब हिन्दूधर्मके समान महान् धर्मको नष्ट कर सकीं, तो फिर धर्मका महत्व ही क्या?

(मृगेन्द्रका प्रवेश)

मृगेन्द्र-महात्मन्! आपकी आज्ञानुसार मैं महारानी और प्रणयिनीको अपने विश्वास पात्र नौकर घनश्यामजीके साथ भेजनेका प्रबन्ध कर आया हूं। अब आप कृपया बतलाइए कि, आपके चिन्तातुर होनेका कारण क्या है।

चिदानन्द—मृगेन्द्र! सर्वनाश हो गया। आज जिस नगरकी सुखमय गोदमें बैठकर तुम आनन्दके स्वप्न देख रहे हो, सवेरा होनेके पहले ही उसके घरोंकी ईंटे बिखेर दी जायंगी! सूर्य्य निकलनेके पहले ही इन्द्रपुरमें प्रलयकी अग्नि धांय २ करके जलने लगेगी। अधिक विलम्ब नहीं है मृगेन्द्र! केवल दो ही घड़ीके पश्चात् कलिंग देशकी यह पवित्र भूमि मृत्युका लीला क्षेत्र बन-यगी-आर्तनादकी जन्मभूमि हो जायगी।

मृगेन्द्र—प्रभो! आप यह क्या कह रहे हैं? अभी तो मैंने गुप्तचरके द्वारा सुना है कि, सम्राट् अशोक आज प्रातः काल ही संधिका प्रस्ताव भेज रहे हैं। इससे अधिक हर्षकी वात और हो ही क्या सकती है? फिर वह कौनसी दारुण विपत्ति है जिसकी आप आशंका कर रहे हैं?

चिदानन्द—तुमने असत्य नहीं सुना, मृगेन्द्र! अवश्य ही सम्राट् अशोक आज प्रातःकाल संधिका प्रस्ताव भेज देते, यदि इसी बीच एक दारुण घटना न घटी होती। (अर्द्ध स्फुट) ओफ! प्रमिला! पिशाचिनी!! . .

मृगेन्द्र—प्रभो! आप इस प्रकार पहेली बुझाकर मेरा विस्मय क्यों वढ़ा रहे हैं? कृपया स्पष्ट कहिए।

चिदानन्द—क्या कहूं मृगेन्द्र! यह सब पैशाचिक काण्ड उस राक्षसी प्रमिलाका रचा हुआ है। बुड्ढे विशाखानन्दकी मतिपर पत्थर डालकर उसने सर्वनाशका मार्ग खोल दिया है। आज रातको तुमसे मिलनेके पहले वह बुड्ढे मंत्रीको ऊपरकी

खिड़कीमें बिठा आई थी। जब तुमने उसका पुत्री भावसे आलिङ्गन किया, उस समय विशाखानन्दने समझा कि यह किसी दुष्ट भावसे इसका आलिङ्गन कर रहा है। इस प्रकार तुम्हारी ओरसे उसने विशाखानन्दका मन फेर कर गुप्तद्वारकी तालियें ले लीं, और अशोकको सूचना देदी कि, दो बजे रातको गुप्तद्वार खुलेगा, उस समय वे ससैन्य मौजूद रहें। हाय! यह संवाद मुझे कुछ विलम्बसे मिला, नहीं तो यह अनर्थ न हो पाता।

मृगेन्द्र—ओफ़! गज़ब हो गया। प्रमिला! मैंने तेरे लिए क्या २ नहीं किया। जबसे तेरे पिताकी मृत्यु हुई तमीसे मैंने तुझे अपनी लड़की प्रणयिनोके समान रक्खा। पर राक्षसी! तूने इस प्रकार उसका बदला दिया। महात्मन्! लेकिन प्रमिलाको ऐसा करनेका क्या प्रयोजन था?

चिदानन्द—उसकी महत्त्वाकाक्षा ही उसका सबसे बड़ा प्रयोजन है। उसकी आकांक्षा थी कि, वह जितेन्द्रसे विवाह कर कलिङ्ग देशकी रानी बनें। मगर जब तुमने उस बातको हंसीमें उड़ा दिया, तो उस क्रुद्ध नागिनने तुमसे बदला लेनेका निश्चय कर विशाखानन्दसे विवाह कर लिया। आज उसकी वह मनोकामना पूर्ण हुई। आज वह प्रतिहिंसाकी प्रतिमूर्त्ति कलिग देशके श्मशानमें अट्टहास करके नृत्य करेगी। और दुर्दैवसे यदि कहीं उसने तुम्हें पलिया तो फिर तुम्हें जीवित न छोड़ेगी। इसलिए मृगेन्द्र! शीघ्र अपनी रक्षाका प्रबन्ध करो।

(नेपथ्यमें भारी धड़ाका होता है)

चिदानन्द—यह लो, मेगजीनमें आग लगा दी। मृगेन्द्र, अब रक्षाका कोई उपाय नहीं है। शीघ्र अपनेको बचाओ।

मृगेन्द्र—भगवन्! इतने कातर क्यों होते हैं? मृगेन्द्रने क्षत्रिय कुलमें जन्म लिया है। क्या हुआ यदि प्रमिलाने विश्वास-घात किया? क्या हुआ, यदि गुप्तद्वार खोल दिया गया? क्या हुआ यदि अशोकके सैनिक इस नगरमें घुस आये? क्या हुआ यदि मेगजीनमें आग लगा दी गई? महात्मन्! कोई चिन्ता नहीं है। (तलवार निकालकर) जहांतक मृगेन्द्रके हाथमें यह तलवार है, वहांतक कोई शक्ति कलिङ्गविजय नहीं कर सकती। फ़िर चाहे वह शक्ति अशोककी ही क्यों न हों!

चिदानन्द—(मुस्कुराकर) चिदानन्द! तुम बहादुर अवश्य हो, मगर राजनीतिज्ञ नहीं। ओफ़! तुम इतना भी नहीं समझते कि, एक तिनका-फिर चाहे वह कितना ही मजबूत क्यों न हो-हाथीको बांधनेमें समर्थ नहीं हो सकता। मृगेन्द्र! इस समय इस आदर्शवादको छोड़कर, शीघ्र अपनेको और हिन्दू धर्मको बचानेकी कोशिश करो।

मृगेन्द्र—तो क्या आप चाहते हैं कि, मैं सारी प्रजाको निर्दय शत्रुओंके हाथमें डालकर अपने प्राण बचाऊं? क्या आप चाहते हैं कि, जो मेरे आश्रित हैं, उन्हें मृत्युके इस पार छोड़कर मैं अलग हो जाऊं। नहीं, महात्मन्! यह नहीं हो सकता।

चिदानन्द—मृगेन्द्र! इस समय यही करना होगा। तुम्हें

अपनी रक्षाके लिए नहीं, अपने धर्मकी रक्षाके लिए अपनी जानको बचाना होगा। मृगेन्द्र! तुम जानते हो कि, इस समय हिन्दू धर्मकी कैसी दशा हो रही है? तमाम राजा अपने अपने धर्मोंको छोड़ बौद्धोंके अधीन हो गये हैं। तमाम राजमन्दिरों-परसे हिन्दू धर्मकी गौरवमय किरणें उतर चुकी हैं। केवल कलिंग देशके राजमन्दिर ही उस स्वर्गीय प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे हैं। तमाम राजाओंके मस्तक परसे हिन्दू धर्मका स्वर्णमय मुकुट उतर चुका है, केवल तुम्हारे ही गौरवमय मस्तकपर वह शोभा पारहा है। यदि तुम न रहे तो इस उज्वल धर्मका अस्तित्व लोप हो जायगा। यह प्रकाशमय धर्म अन्धकारकी गहरी कालिमामें लोप हो जायगा और यदि तुमने किसी तरह अपनी रक्षा करली तो सम्भव है, यह रहा सहा पौधा भी एक दिन फूले फले, और अपनी सुरभिसे संसारको सुरभित करदे। इसलिए मृगेन्द्र! सर्वस्व देकर भी हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेके लिए तुम्हें अपनी रक्षा करनी होगी।

(नेपथ्यमें मारकाटका शब्द और आर्तनाद सुन पड़ता है)

चिदानन्द—मृगेन्द्र! शीघ्रता करो, अब भागनेका समय नहीं है। (कुछ वस्त्र निकालकर) शीघ्र इन वस्त्रोंको धारण करो। और बौद्ध भिक्षु बनकर एक ओर खड़े हो जाओ, फिर तुम्हें कोई स्पर्शतक न करेगा। देखना, बहुत शान्तिपूर्वक खड़े रहना। यदि कोई मेरी हत्या भी करने लगे तो करने देना, यदि मैं मर भी गया और धर्मकी रक्षा हो गई तो मेरे समान अनेक चिदानन्द

संसारमें मिला करेंगे। और यदि धर्म ही डूब गया तो सर्वनाश हो जायगा।

मृगेन्द्र—नहीं प्रभो! मुझे यह किसी तरह स्वीकार नहीं है। देखिये, वे निर्दय भिक्षुक मेरी निरपराध प्रजाकी हत्याकर रहे हैं। मेरे प्रजाजन किस प्रकार आर्तनाद कर रहे हैं? प्रभो! मुझे जाने दीजिये। मैं उनकी रक्षा करूंगा।

चिदा—यह समय हठ करनेका नहीं है। तुम शीघ्र इन वस्त्रोंको धारण करो। यदि मेरा अनुरोध नहीं मानते तो मैं आज्ञा करता हूं कि देशकी एव धर्मकी रक्षाके निमित्त अपनेको बचानेके लिये इन वस्त्रोंको धारण करो।

मृगेन्द्र—प्रभो! आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। लेकिन महात्मन्! मृगेन्द्रको कर्त्तव्यच्युत करना आपको उचित नहीं था (वस्त्र पहना)

(आवाज बढ़ते बढ़ते एकदम दर्वाजा टूटता है और कई सैनिकोंके साथ हाथमें नङ्गी तलवार लिये प्रमिला प्रवेश करती है)

(चारों ओर देखकर)

प्रमिला—स्वामीजी! राजा मृगेन्द्र कहां पर है? शीघ्र बतलाइये। (स्वामीजी शान्तिपूर्वक चुप रहते है)

प्रमिला—जवाब क्यों नहीं देते? कहां भगा दिया आपने मृगेन्द्रको? शीघ्र बतलाइये। जानते हैं आपके साथ बात करनेवाली कौन है?

(स्वामीजी चुप रहते हैं।)

प्रमिला—(तलवार खींचकर) ओ दुष्ट सन्यासी ! तू प्रमिला-की शक्तिको नहीं पहचानता है, इसीलिये चुप है अच्छा तो देख अब उसकी शक्तिकी महिमा। (तलवार तानके आगे बढ़ती है)

चिदानन्द—ओ राक्षसी! खबरदार! यदि अब वहांसे एक पैर भी आगे बढाया! याद रख इस देहपर अभी किसी स्त्रीकी छायातक न पड़ी है, अब इसे स्पर्शकर चिदानन्दकी क्रोधाग्निको प्रज्वलित न करना।

(चिदानन्दका नाम सुनते ही सब लोग डरकर एक २ कदम हट जाते हैं)

प्रमिला—(नरम होकर) स्वामीजी ! मुझे मालूम नहीं था कि आप हैं। क्षमा कीजिये मुझसे भूल हुई। क्या आप जानते हैं कि राजा मृगेन्द्र कहां है ?

स्वामी जी—(दृढ़तापूर्वक) हां जानता हूं।

प्रमिला—क्या यह भी आप जानते हैं कि वह वापस आयगा या नहीं ?

स्वामी—हां, जानता हू।

प्रमिला—क्या आप बतला सकते हैं कि राजा मृगेन्द्र इस समय कहा है ?

स्वामी—नहीं।

प्रमिला—क्यों ?

चिदानन्द—तेरी इस बातका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है।

(कुरङ्गी दासीका प्रवेश)

कुरंगी—रनवासके अन्दर तलाश करनेसे मालूम हुआ कि महारानी इन्दुमती और राजकन्या प्रणयिनी कलसेही महलके बाहर अन्यत्र चली गई हैं।

प्रमिला—(चौंककर) क्या इन्दुमती और प्रणयिनी कोई नहीं है ? (स्वामी जीसे) स्वामीजी ! क्या आप जानते हैं कि वे दोनों कहां है।

स्वामी—जानते हैं।

प्रमिला—बता सकते हैं।

स्वामी—नहीं।

प्रमिला—क्यों

स्वामी—इसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं है।

प्रमिला—स्वामीजी ! सम्राट्की आज्ञा है कि जिस व्यक्ति-पर मृगेन्द्रके भगा देनेका संशय हो, उसे गिरफ्तार कर लें। इसलिये मुझे मेरा मनुष्यत्व आज्ञा देता है कि मैं आपको गिरफ्तार करूं।

स्वामीजी—यदि सम्राट्को आज्ञा है तो मुझे स्वीकार है।

प्रमिला—सैनिको ! गिरफ्तार करो।

(सैनिक स्वामजीको गिरफ़्तार कर ले जाते हैं।)

प्रमिला—(दांत पीसकर) राजा मृगेन्द्र, रानी इन्दुमती और राजकन्या प्रणयिनी तीनों गायब ! स्वामी ! यह सब तेरी करतूत है। (कुछ सोचकर अट्टहास करती है।) अच्छा ......ठीक है......स्वामी भोग अपनी करतूतका फल...इस

हत्याका अपराधी तुझे ही बनाकर फांसी दिलवाऊंगी। प्रमिलाने मनुष्यत्व छोड़ा है तो पूरी पिशाची बनकर रहेगी।

(पटाक्षेप)

पांचवां दृश्य

○○○○○○

स्थान—सम्राट् अशोकका खेमा

समय—प्रातःकाल

(सम्राट—अशोक)

अशोक—ओफ़! यह भयानक आर्त्तनाद काहेका सुनाई पड़ रहा है? इन्द्रपुरमें प्रलयकी लपटोंके समान यह अग्नि क्यों धधक रही है? हाय हाय यह स्त्रियोंका आर्त्तनाद है। ये दुध-मुंहे बच्चे चिल्ला रहे हैं। मोहन!

(मोहनका प्रवेश और अभिवादन करना)

अशोक—मोहन! इन्द्रपुरमें यह आर्तनाद क्यों उठ रहा है? क्या तुम इसका कारण जानते हो?

मोहन—भगवन्! कलिङ्ग विजय हो गया।

अशोक— ऐ! कलिंग विजय हो गया?

मोहन—हां, भगवन्! आज आधी रातको ही राजमाता सुभिमती, कुमार वीताशोक और भिक्षु सम्पुष्टाचार्य्य यहां आये थे। उस समय भगवन् शयन कर रहे थे। उन्होंने आकर

मुझसे कहा कि "कलिंग विजय हो गया।" मैं भगवन्को जगानेके निमित्त आने लगा मगर बीच हीमें राजामाताने मुझे रोककर कहा कि अभी उसे कष्ट देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है प्रातःकाल आप ही मालूम हो जायगा। इसी कारण उस समय मैंने आपको कष्ट न दिया।

अशोक—मोहन! तुमने उस समय मुझे न जगाकर बहुत बुरा किया। उन लोगोंने अपनी हिंसक वृत्तिको मनमाना चरितार्थ करनेके निमित्त ही ऐसा किया था। हाय! बेचारी कलिंग देशकी प्रजापर उन लोगोंने न मालूम क्या क्या अत्याचार किये होंगे? ..यह कौन भइया आ रहे हैं?

मोहन—हां कुमारमहाराज ही तो हैं।

(वीताशोकका प्रवेश)

वीताशोक—भइया! कलिंग विजय हो गया।

अशोक—(प्रेम गद्गद होकर) आओ भइया! (गले लगाना) भइया! यह तुम्हारे ही प्रतापका फल है। तुम मौर्य्य कुलके गौरव हो। तुम्हारा हृदय चन्द्रमासे भी अधिक शीतल, विश्वाससे भी अधिक स्वच्छ और कर्तव्यसे भी अधिक सुन्दर है। तुम्हारे समान भाईको पाकर मैं अपनेको धन्य समझता हूं।

वीताशोक—भइया! आप मौर्य्य कुलके प्रतिभाशाली सूर्य्य हैं।

अशोक—भइया! देखो वे राजमाता आ रही हैं। अब हमलोगोंको यहांसे अलग हो जाना चाहिये। यदि इन्होंने हमें प्रेम सम्भाषण करते देख लिया तो बुरा होगा।

वीताशोक—भइया! आपका कथन बिलकुल ठीक है। हाय, हमलोग बन्धुप्रेमके मधुर एव पवित्र बन्धनसे बलात्कार विलग किये जा रहे हैं। बन्धुप्रेम—जो सब कर्तव्योंसे बडा कर्तव्य है, जीवनकी सबसे बड़ी महाशिक्षा है, मनुष्य जातिका स्वाभाविक एव सनातन धर्म है। बन्धुप्रेम—जिसके कोमल कर स्पर्शसे कर्तव्यकी कठिनता दूर हो जाती है। भक्ति और स्नेह हस उठते है बन्धुप्रेम—जो एक स्वर्गीय प्रतिभासे मनुष्य जीवनको मण्डित करता है, आत्माको स्फूर्त्ति देता है। मृत्युकी अधेरी घड़ीको प्रकाशित कर देता है। मृत प्राय शक्तिको सजीवित कर देता है। उसी बन्धुप्रेमसे हमलोग विलग रखे जाते हैं। भइया! भारतवर्षका साम्राज्य हमलोगोंके पास होनेपर भी हम दीन हैं।

अशोक—सच है भइया! (दोनों अलग हो जाते हैं)

(सम्पुष्टाचार्य्य, प्रमिला और कुछ भिक्षुओंके साथ राजमाताका प्रवेश)

राजमाता—अशोक! आज कलिंग देश विजय हो गया। मौर्य्यवशके विमल यशमें जो कालिमा लगने वाली थी वह न लगी। मौर्य्यवशकी कीर्तिध्वजा उसी गौरवके साथ इन्द्रपुरपर भी फहरा रही है।

अशोक—माताजी! आपके एवं आचार्य्य सम्पुष्टाचार्य्यके नीति कौशलने एवं कुमार वीताशोकके प्रबल प्रतापने आज जो कर दिखाया उसके लिये मगधका राजसिंहासन हमेशा आपका

आभारी रहेगा। आपके नीति कौशलका एवं कुमारकी बहादुरीका मनोरञ्जक वृत्तान्त मैं फिर कभी सुनूंगा। पहले मैं यह चाहता हूं कि यहांका उचित प्रबन्धकर हम शीघ्र पाटलिपुत्र लौट जाय। राजा मृगेन्द्र कहां है? वह सन्धि करनेको तो तैयार है न?

प्रमिला—(कांपकर) राजा मृगेन्द्रका कल रातमें ही किसीने खून कर डाला।

अशोक— क्या कहा? राजा मृगेन्द्रका खून!!! उस हिन्दू धर्मके जाज्वल्यमान रत्नके—उस कलिंग देशके वीर शिरोमणिके-खूनसे किस पापीने अपने हाथ लाल किये हैं? हाय! मैं उस वीर शिरोमणिका अभिनन्दन भी न कर सका।

सम्पुष्टा—भगवन्! अभीसे आप आश्चर्य्यान्वित न हूजिये। अभी ज्यों २ इस रहस्यका स्फोट होगा त्यों २ आपके ज्ञानचक्षु खुलते जायगे। संसारके उस पापमय चित्रको देखकर आप आतंकके मारे आंखें बन्द कर लेंगे। क्या आप जानते हैं कि इस हत्याका हत्याकारी कौन है?

अशोक—नहीं।

प्रमिला—(क्रोधसे होंठ चबाते हुए) इस हत्याका अपराधी? ......इस हत्याका अपराधी है, गेरुए वस्त्र धारण करनेवाला एक सन्यासी!! सैनिको! उस अभियुक्तको सम्राट्के सम्मुख उपस्थित करो। (सैनिक जाते हैं)

अशोक—आचार्य्य! यह नारी कौन है? इसकी आंखोंसे

निकलती हुई चिनगारियां, और क्रोधके मारे काटे हुए होंठोंसे निकलता हुआ रक्त, इस बातकी सूचना देता है कि यह कोई साधारण स्त्री नहीं है। इसके वाक्योंमें गर्जन, हंसीमें अट्टहास, और अंगभंगीमें आंधी है। बतलाइए, यह रौद्रमूर्त्तिकौन है?

सम्पुष्टाचार्य्य—यह कलिंग देशके प्रधानमंत्री विशाखानन्दकी सातवीं पत्नी प्रमिला है। इसने हमें कलिङ्गविजयमें बड़ी सहायता दी है।

अशोक—किस प्रकारकी सहायता? इसकी आंखोंकी तीक्ष्ण चमक, इसके हृदयकी धड़कन, और इसके चेहरेका उतारचढ़ाव इस बातको सूचित कर रहा है कि, अवश्य इसने अपने स्वामी और देशके साथ विश्वासघात किया है।

(चिदानन्दके साथ सैनिकोंका प्रवेश)

(चिदानन्द एक ओर शान्त भावसे खड़े रहते हैं)

अशोक—प्रमिला! क्या तुम इन्हीं सन्यासीजीको मृगेन्द्रकी हत्याका अपराधी बनाती हो?

प्रमिला—हां, यही गेरुए वस्त्रधारी, संसारविरक्त साधु मृगेन्द्रका हत्याकारी हैं।

अशोक—स्वामीजी! तुम्हारा नाम क्या है?

स्वामी—चिदानन्द।

अशोक—हरिद्वारके स्वामी चिदानन्द! मृगेन्द्रके गुरु चिदानन्द!! आश्चर्य्य है। स्वामीजी! प्रमिला तुम्हें राजा मृगेन्द्रकी हत्याका अभियुक्त बतलाती है। साध्य हो तो अस्वीकार करो!

स्वामी—(हंसकर) यह क्या, प्रमिला ! क्या अब भी तेरा पापपूर्ण हृदय तृप्त न हुआ। अब मेरे द्वारा तू कौनसा गूढ़ प्रयोजन सिद्ध किया चाहती है (सम्राट्से) सम्राट् ! मैं इस अपराध को अस्वीकार करता हूं, क्योंकि राजा मृगेन्द्र इस समय भी हिन्दू धर्मका झण्डा अपनी छातीसे चिमटाये सकुशल जीता जागता मौजूद है। और उपयुक्त समय आनेपर फिर वह अपने धर्मका एवं राज्यका उद्धार करेगा।

अशोक—मृगेन्द्र जीवित है ?

चिदानन्द—हां !

अशोक—आश्चर्य्य है ? मैंने तो ऐसा रहस्यमय काण्ड अपने जीवनमें पहले कभी न देखा। इसका रहस्य सुलझनेके बदले अधिकाधिक उलझता जा रहा है।

चिदानन्द—सम्राट् अभी क्या हुआ है ? जिस दिन इस रहस्यका पूरा स्फोट होगा उस दिन सत्य भयसे कांप उठेगा ! प्रकाश आतंकसे अपना मुंह छिपालेगा ! विश्वास आर्तनाद कर उठेगा ! जिस दिन यह भयङ्कर रहस्यस्फोट होगा, उस दिन माताएं गोदसे अपने बच्चोंको फेंक देंगी ! बन्धु बन्धुके मुहकी ओर आख उठाकर न देख सकेगा। पति अपनी पत्नीके हृदयमें विपका भरा कुण्ड देखने लगेगा।

अशोक—आश्चर्य्य है ! स्वामीजी, वह रहस्य क्या है ?

चिदानन्द—मैं इस समय नहीं बतला सकता।

अशोक—अच्छा मृगेन्द्रकी लाश लाओ।

(कुछ लोग जाकर बिना सिरकी एक लाश उठा लाते हैं)

अशोक—यह क्या ? इसका मस्तक कहां गया ?

प्रमिला—इसका उत्तर मेरी अपेक्षा ये बाबाजी अच्छा देसकेंगे।

अशोक—स्वामीजी ! यह धड किसका है ?

चिदानन्द—यह धड किसका है, सोतो मैं नहीं जानता, मगर इतना जानता हूं कि, यह मृगेन्द्रका नहीं है।

अशोक—इसका प्रमाण ?

चिदानन्द—यही कि मृगेन्द्र अभीतक जीवित है।

अशोक—वह कहां है, आप जानते हैं ?

चिदानन्द—अवश्य।

अशोक—बतला सकते हैं ?

चिदानन्द—नहीं।

सम्पुष्टा—तुम्हें बतलाना होगा।

चिदानन्द—मैं तुम्हारे समान नीच, धर्महीन, पाखण्डी, एवं अनाचारी भिक्षुओंसे जबान लडाना नहीं चाहता। सम्राट्! मैं किससे बात कर रहा हूं, मौर्य्य वंशके प्रकाशमान नक्षत्र अशोकसे, या महात्मा बुद्धकी आड़में मनमाना अत्याचार करनेवाले सम्पुष्टाचार्य्यसे।

सम्पुष्टा—ऐ हिन्दू धर्म कुलांगार! तू मेरा अपमान कर रहा है।

अशोक—शान्त रहिए, आचार्य्य! आपने व्यर्थ ही बीचमें

बोलकर वितण्डावाद बढ़ाया। स्वामीजी! खैर, आप मृगेन्द्रका पता न बतलावें। मगर कृपाकर जहांतक इस बातका पूरा अनुसन्धान न हो जाय, वहांतक आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।

विदा—अच्छी बात है।

अशोक–(राधागुप्तसे) आर्य्य! स्वामीजीके स्नानध्यान, पूजापाठका पूरा प्रबन्ध करवा दें। देखिए! इनके सम्मानमें किसी प्रकारकी कमी न आवे।

सम्पुष्टा–भगवन्! यह बात राजनीतिके विरुद्ध है। जिसने हत्याके सदृश भयङ्कर अपराध किया है, उसके लिए यह व्यवस्था कहांतक ठीक है?

अशोक—अभीतक उनपर हत्याका अपराध सिद्ध तो नहीं हुआ न? मेरा पक्का विश्वास है कि, यह व्यक्ति इस सम्बन्धमें बिलकुल निरपराध है। पर फिर भी जहांतक पूरा अनुसन्धान न हो जाय, वहांतक मैं इसे अपने पास रक्खूंगा।

प्रमिला–(भयसे कांपते हुए अर्द्ध स्फुट) क्या कहा? निरपराध है? (फिर सम्हलकर) भगवन्! शीघ्रही सत्यका प्रकाश होगा।

अशोक–खैर देखा जायगा। अब प्रश्न यह है कि कलिङ्ग देशका राजसिंहासन किसके सुपुर्द किया जय?

राजमाता–मेरी समझमें इसके लिए "विशाखानन्द" से अधिक उपयुक्त कोई दूसरा पात्र नहीं।

अशोक—मैं भी यही उचित समझता हूं। मगर इसमें दो शर्त्तें रहेंगी। पहली तो यह कि यदि राजा मृगेन्द्र जीवित मिल जाय तो उसे बिना किसी शर्त्तके राज्य लौटा दिया जाय। दूसरी यह कि, यदि जितेन्द्र बौद्धधर्म स्वीकार करले तो उस हालतमें वह भी राज्यका अधिकारी हो सकेगा।

राजमाता-लेकिन इन शर्त्तों की आवश्यकता क्या है ? राजा मृगेन्द्र तो स्वर्गसे लौटकर आही नहीं सकता, एवं जितेन्द्र भी बौद्ध धर्मको ग्रहण नहो कर सकता। ऐसी हालतमें मुझे तो ये शर्त्तें व्यर्थ ही जान पड़ती हैं।

भिक्षु सम्पुष्टा—बिलकुल व्यर्थ! यह राजनीतिके विरुद्ध है।

अशोक—आचार्य्य! राजनीति राजाओंके लिए है, आपके समान संसारविरक्त भिक्षुओंके लिए नहीं। इसलिए इस विषयमें मैं आपकी रायकी अपेक्षा नहीं करता। ये शर्त्तें रखना ही होंगी।

सम्पुष्टा—खैर यदि ये शर्त्तें रक्खीं भी जाय तो कोई हानि नहीं।

अशोक—अच्छा तो अब दर्बार विसर्जित हो।

(प्रमिलाके सिवा सब जाते हैं।)

प्रमिला—अशोक! कोई हानि नहीं। यदि तुम डाल २ जाओगे, तो प्रमिला भी पात २ घूमेगी। मैं समझे हुए थी कि अशोक एक धार्मिक, उदासीन एवं दब्बू सम्राट् है। मगर नहीं, वह मेरी भूल थी। यह तो राजनीतिका पूरा जानकार है। तभी तो मेरा वार पूरा न बैठा। चिदानन्द भी बच गया, और मेरे

रानीपनके स्थायित्वमें भी सन्देह हो गया। मूर्ख राजमाता! लठ भिक्षुक!! तुम क्या जानो कि, इन दो शर्त्तोंमें प्रमिलाका भविष्य गर्भित है। तुम क्या जानो कि, मृगेन्द्र अभी जीता जागता मौजूद है। खैर कोई हानि नहीं। अशोक! यदि ये शर्त्तें न उठी तो शर्त्तोंका बनानेवाला ही प्रमिलाके क्रोधका शिकार होगा। प्रमिला किसीको नहीं डरती। "क्षमा" शब्दका उसकी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं। (प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

दूसरा अंक
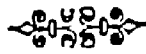
पहला—दृश्य

स्थान—हरिद्वार नगरका बाहरी दृश्य ।

समय—सन्ध्याकाल

(एकशिला पर बैठा हुआ जितेन्द्र)

जितेन्द्र—कैसा सुन्दर दृश्य है ! प्रकृतिकी कृपासे चारों-ओर कैसी सुन्दरता छा रही है । झरना कल २ नाद कर बहता हुआ संसारको कर्म्मण्यताका सदेश दे रहा है । हीन गौरवके साथ अस्त होता हुआ सूर्य्य संसारकी अनित्यताकी एक झलक बतला रहा है । अहा ! प्रकृति भी कितनी करुणामयी है ! यह प्रकृति देवताके वरदानकी तरह, माताके स्नेहकी तरह, भक्तकी भक्तिकी तरह, मनुष्यकी अनुकम्पा की तरह, सारे संसारपर अपना दयामय हाथ हमेशा फेरा करती है । यह प्रकृति अपने प्रेम वितरणमें कजूसी नहीं करती, बदला नही चाहती, विचार नहीं करती । उन्मुक्त उदार दोनों हाथोंसे अपनी करुणाका प्रवाह संसारमें प्रवाहित किया करती है ।

(एक भयाकुल हरिणी भयसे कापती हुई जितेन्द्रके पास आकर खडी हो जाती है ।)

जितेन्द्र—अहा ! यह हरिणी भयसे कितनी विह्वल हो रही है। इसके मृदुल एवं दीन मुखपर भयके चिह्न करुणा पर छाये हुए आतंककी तरह, या नवविकसित गुलाब पर पड़ते हुए पालेकी तरह मालूम पड़ते हैं, इसके सुन्दर मुखपर पड़ी हुई पसी-नेकी बूंदे, रमणीके कपोलोंपर रक्खे हुए सुन्दर अश्रु विन्दुकी तरह, सुन्दर कमलपर पड़े हुए ओस विन्दुओंकी तरह या दुःखके ऊपर सान्त्वनाकी तरह कैसी भली मालूम हो रही हैं।

(कुछ दूरीपर एक दौड़कर आती हुई सुन्दरी दृष्टि गोचर होती है।)

जितेन्द्र—यह वालिका कौन है ? इसका सौन्दर्य्य कैसा अपूर्व है ? भयानक अन्धेरी रातमें वीणाकी मधुर झंकारकी तरह, घोर वृष्टिके पश्चात् सूर्य्यके शान्त प्रकाशकी तरह, स्वच्छ नील नभोमण्डलमें उज्वल उषाकी तरह, यह कैसा सौन्दर्य्य है ? लहरें लेते हुए प्रशान्त सागरमें पड़ती हुई प्रातःकालीन सूर्य्यकी किरणोंकी तरह स्थिर और चञ्चल, गंगाके जलमें पडते हुए पूर्ण चन्द्रके विम्बकी तरह सौम्य और सुन्दर, यह कैसी ज्योति है ?

(हांफ़ते हुए बालिकाका प्रवेश)

जितेन्द्र—देवि ! क्या मैं नम्रतापूर्वक यह बात पूछ सकता हूं कि आप क्यों इस दीन हरिणीका पीछा कर रही हैं ? देखिए ! यह हरिणी भयसे कैसी कांप रही है ? क्या इसने आपका कोई अपराध किया है ?

वालिका—(वहुत लज्जित होकर) वह केसरी (पूर्व दिशाकी

ओर संकेत करके) मेरी इस हरिणीका पीछा कर रहा है। इस-लिए इसकी रक्षाके निमित्त मैं इसके पीछे दौड़ी आ रही हूं।

जितेन्द्र-(आश्चर्य पूर्वक) सिंहके पंजेसे आप इसे बचावेंगी ?

बालिका—हां, क्यों क्या आपको आश्चर्य्य हो रहा है ? मैं राजकन्या हू। हमारे वंशका प्रधान धर्म अत्याचारियोंके पंजेसे निर्बलोंकी रक्षा करना है। मैं केवल निरी बालिका ही नहीं हूं। आप मुझे जरा यह धनुषबाण दीजिए, फिर देखिए कि, किस प्रकार मैं अपनी, आपकी, और इस मृगीकी रक्षा कर लेती हूं।

जितेन्द्र—(हंसकर) देवि! इस समय तुम्हारे वीरत्व प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नही। इस समय तुम्हारी और इस मृगी-रक्षा करनेके लिए एक क्षत्रियकुमार उपस्थित है।

(धनुष पर बाण रखकर, कर्ण पर्यन्त खींचता है, पर मृग-राजको देखते ही कुछ सोचकर वापस रख लेता है, यह देखकर युवती धनुषबाण उठाकर संधान करती है)

जितेन्द्र—ठहरो देवि! ठहरो। अपने रमणियोचित गुणको भूलकर इस वीरोचित कार्य्यको तुम न करो। (अपने हाथसे उसका धनुष समेत हाथ पकड़ लेता है)

युवती—(स्वगत) ओफ! (प्रगट) छोड़िए! मुझे क्या किया जाय, जब वीर ही अपने वीरोचित गुणको भूल जाते हैं तब हम राजकन्यायें अपने मृदुलभावको छोड़कर कठोरता धारण करलेती हैं। छोड़िए, देखिए! वह सिंह कितना समीप आ गया है। (धीरेसे हाथ छुडाना)

जितेन्द्र—देवि ! तुम भूलती हो। तुम उस भावकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं, जिसके वश होकर मैंने धनुष बाण छोड़ दिया है। मैं इतना कायर नहीं हूं कि, अपनी आत्मरक्षाका भार भी तुम जैसी कोमलांगियों पर डालूं।

युवती—फिर धनुष क्यों रख दिया ?

जितेन्द्र—इसका उत्तर मेरा यह वनराज ही देगा।

(दौड़कर सिंहके पास चला जाता है और उसकी आयाल पर हाथ फिराता है। सिंह उसकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखता हुआ, उसके पैर चाटता है)

जितेन्द्र—देवि ! अब तो फट गया तुम्हारे भ्रमका इन्द्रजाल ? फट गया तुम्हारे हृदयके सन्देहका परदा ? अब तो तुम्हें विश्वास हुआ न।

युवती—(अत्यंत आश्चर्यान्वित होकर) महाशय ! आप मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपके महत्वको नहीं पहचाना, भारी भूल हुई, उसके लिए क्षमा करें ! अहा ! धन्य है वह चरित्र जिसके स्पर्शके जादूसे हिंसक पशु अपनी हिंसक वृत्तिको छोड़ देता है। लोह स्वर्ण हो जाता है। मनुष्य देवता हो जाता है। आप महानुभाव हैं।

जितेन्द्र—बस करो। इस शिष्टाचारकी आवश्यकता नहीं। यह तो एक अत्यंत स्वाभाविक बात है। देखो तो यह वनराज तुम्हारी मृगीके साथ कितने प्रेमसे खेल रहा है। यह वनराज ऐसे दुर्बल प्राणियोंको कभी नहीं सताता।

युवती—धन्य है। आपके वीरत्वको, जिसके प्रबल प्रतापसे सिंहके समान हिंसक पशु भी अपनी स्वाभाविक कठोरताको त्याग कर आपके चरणोंपर लेटते हैं। हिंसक पशुओंका शिकार करना तो संसारमें बहुतसे लोग जानते हैं, पर उन्हें मित्र बना-लेना आपके समान विरले मनुष्योंका ही काम है। महाशय! आपके इस वनराजकी बदौलत ही मुझे आपके दर्शनोंका अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ, इसलिए मैं चाहती हू कि, इस वनराजके उप-कारका ऋण किसी प्रकार चुका दूं।

(सिंहसे) केसरी! तुम्हारी ही कृपासे आज मुझे एक मनुष्य कुलके केसरीका दर्शन हुआ है, अतएव इस उपकारके बदलेमें मैं अपनी यह रत्नमाला तुम्हें उपहार स्वरूप देती हू। (माला हाथमें लेती है)

जितेन्द्र—हरिणी! तुमने भी मुझे आज एक मानवकुलकी हरिणीके दर्शनोंसे कृतार्थ किया। इस उपकारका बदला चुकानेके लिए इस मनोहर अवसरपर मेरे पास इस मुद्रिकाके सिवा और कुछ नहीं है। और मुद्रिका ऐसी वस्तु नहीं जिसे तुम पहन सको, अतएव मैं यह तुम्हारे उपहारकी अमानत तुम्हारी स्वामिनीको देता हूं।

(युवतीकी कनिष्ठिकामें अंगूठी पहना देता है)

युवती—(लज्जित होकर) वनराज! तुम तो जंगल झाड़ि-योंमें विचरनेवाले हो। तुम इस हारको नहीं रख सकोगे। अतएव मैं तुम्हारी यह अमानत तुम्हारे स्वामीको देती हूं।

(युवकके गलेमें माला डाल देती है)

युवक—देवी! तुम्हारे इस अनुग्रहसे मैं कृतार्थ हुआ। आशा है मेरी अंगूठीका और उसके साथ अपने इस उपासकका भी ध्यान रक्खोगी।

युवती—देव! मेरी रत्नमालाका भी स्मरण रखिए।

(युवतीकी कुछ सखियोंका प्रवेश)

१ सखि—(आश्चर्य्यसे) इन्दिरा! तुम इस सिंहके पास खड़ी हुई क्या कर रही हो? क्या तुम्हें इससे भय नहीं मालूम होता?

इन्दिरा—कमला! यह वनराज बहुत ही दयालु एवं नम्र है। यह व्यर्थमें किसीको नहीं सताता। देखो तो अपनी यह हरिणी इसके साथ कितने प्रेमसे खेल रही है! पापके ऊपर मूर्त्तिमान करुणाकी तरह, आर्त्तनादके ऊपर मधुर संगीतकी तरह और कर्त्तव्यके ऊपर प्रेमकी तरह इस वनराजके भयानक शरीर-पर एक अप्रत्यक्ष प्रेममयी मूर्त्ति वास करती है।

२ सखि—अद्भुत है।

३ सखि—वनराज तो इस हरिणीके साथ क्रीड़ा कर रहा है, (एक कटाक्ष फेंककर) मगर यह नहीं मालूम होता कि, हमारी यह मानव जातिकी हरिणी किस वनराजके साथ क्रीड़ा कर रही है!

२ सखि—उस वनराजकी बात मत पूछो, सखि! वह वन-राज गुलाबजामुनसे भी अधिक मीठा, चिऊड़ेसे भी अधिक

देवी ! इस अंगूठीको स्मरण रखना । (स. अ. ६४)

चरपरा और बरफ़से भी अधिक ठण्डा है। देखो न इन्दिरा किस प्रकार छुपी आंखसे उसकी ओर देख रही है।

इन्दिरा—(बनावटी क्रोधसे) चल, दूर हो।

सब—हां, हां, अब तो हम दूर होंगी ही। भला ऐसे समय-में हम कब अच्छी लगेंगी? यह अस्त होता हुआ सूर्य्य, यह उदय होता हुआ चन्द्रमा, यह पहाड़की सुन्दर हरियाली .... यह कलाकन्द सा . .. . ना...ना जाने दो! अच्छा हम जाती हैं इन्दिरा! (जाना चाहती हैं)

इन्दिरा—ना' 'ना . ठहरो, मैं भी चलती हूं।

सब—इन्दिरा! फिर यह न कहना कि, तुम सबोंने यहां आकर मेरे सुनहरी स्वप्नको मिटा दिया।

इन्दिरा—(मुसकराकर) चलो, हटो, तुम्हें तो हमेशा ही हंसी सूझा करती है। हां, यह तो कहो कि, तुम्हारा यहां किस प्रयोजनसे आना हुआ?

कमला—इन्दिरा! तुम्हें बुलाने आई हैं। सुभद्रांगी माताने निश्चय कर लिया है कि, आज ही रातको पाटलिपुत्रके लिए प्रस्थानित हो जायं। कलिंग देशके युद्धका अन्त हो गया।

जितेन्द्र—(आश्चर्य्यसे) कलिङ्ग देशके युद्धका अन्त हो गया? भला उसका अन्त किस प्रकार हुआ?

कमला-जैसा अनुमान था, वही हुआ। सर्वत्र विजयी सम्राट्की ही विजय हुई। कलिङ्ग देशके राजा मृगेन्द्रकी हत्या यहींके चिदानन्द नामक किसी साधुने कर डाली।

जितेन्द्र—(सहसा) झूठ, बिलकुल झूठ। चाहे बिजलीका स्थिर होना सच हो, चाहे आगका शीतल होना सच हो, मगर यह झूठ है।

इन्दिरा—क्या झूठ है?

जितेन्द्र—(सम्हलकर) नहीं, कुछ नहीं, न मालूम एकाएक मेरे मुंहसे क्या निकल गया। इन्दिरा! तुम सम्राट्की कौन होती हो?

इन्दिरा—सम्राट्, मेरे सहोदर भ्राता हैं।

जितेन्द्र—चिदानन्द स्वामीको गिरफ्तार करके कहां रक्खा है।

कमला—सम्राट् उन्हें अपने साथ ही पाटलिपुत्र ले गये हैं?

इन्दिरा—(एक अर्थपूर्ण दृष्टि डालकर) आपका शुभ नाम?

जितेन्द्र—इन्दिरा! इस समय तुम मेरा नाम न पूछो। उसे सुनकर तुम्हें लाभ न होगा। इस समय काल चक्रके दुष्ट फेरमें पड़कर मेरा व्यक्तित्व चूर्ण विचूर्ण हो रहा है। यदि कभी समयने पलटा खाया तो मैं बहुत ही हर्षित चित्तसे तुम्हें अपना नाम बतलाऊंगा। अभी तुम केवल इतना ही समझो कि, मैं एक क्षत्रिय कुमार हूं।

इन्दिरा—(रुकते २) एक बात, एक बात मुझे आपसे एक बात और कहना है। वह-वह-वह-यही कि, आजसे मेरे जीवनका प्रधान लक्ष्य यह मुद्रिका ही रहेगी। आप भी इस रत्नमालाको न भूलियेगा।

युवक—नहीं, नहीं, यह रत्नमाला भक्तके इष्टदेवकी तरह, विरहीकी स्मृतिकी तरह, कविके स्वप्नकी तरह, हमेशा मेरे हृदय मन्दिरमें स्थित रहेगी। यह रत्नमाला कजूसके स्वर्णकी तरह, कायरके प्राणोंकी तरह, और, और, और तुम्हारे प्रेमकी तरह हमेशा मेरे हृदयमें बन्द रहेगी। इन्दिरा! यह रत्नमाला मेरे सूखे हुए हृदय विपिनकी सुन्दर कली, मेरे दग्ध मरुस्थलका निर्मल झरना और मेरी आत्माका सन्तोष है इसे मैं कैसे भूल सकता हूं?

इन्दिरा—अच्छा तो विदा।

(सब जाती हैं, युवक एक टक दृष्टिसे उधर देखता है)

युवक ओफ! कैसा आश्चर्य है। असम्भवपर असम्भव बातें सुनाई दे रही है। पहिले तो कलिंग विजयही असम्भव, दूसरे पिताजीकी हत्या और भी अधिक असम्भव,—और तिस पर वह चिदानन्द स्वामीके द्वारा! एकदम असम्भव। अवश्य इस षड्यन्त्रका विधाता कोई धूर्त शिरोमणि होना चाहिए। चलूं, देखें इसका पता लगानेकी कोशिश करूं। लेकिन यह किस प्रकार हो सकता है? यदि कहीं बौद्ध भिक्षुओंने मुझे देखलिया तो अवश्य मुझे पकड लेंगे। पकडे जानेका या मारे जानेका मुझे कोई भय नहीं पर उस हालतमें मेरा कार्य्य अधूरा रह जायगा। इसलिये इस समय कौशलसे काम लेनाही उचित है। (सोचकर हस उठता है) अच्छा ठीक है। भगवन्! जितेन्द्रको क्षमा करना। किसी विशेष कार्य्यसिद्धिके निमित्त ही मुझे ऐसा करना पडता है। (जाता है।)

दूसरा—दृश्य

स्थान—मथुरा नगरीका बाहरी तट

समय—प्रातःकाल

(रानी इन्दुमती, पुरुषवेशमें राजकन्या प्रणयिनी और घनश्यामजी)

प्रणयिनी—क्या यही वह मथुरा नगरी है, जिसमें एक समय भगवान् कृष्णने अपनी रसमयी लीला की थी? क्या यही वह मथुरा नगरी है जिसको एक दिन भगवान कृष्णने अपनी लीलामयी क्रीड़ासे स्वर्ग बना डाला था? क्या यह वही ...

घनश्याम—बस, प्रणयिनी देवी! बस करो। इस तरहकी कविता करना मैं नहीं जानता। यह मथुरा नगरी है, मगर यह कौनसी मथुरा है सो मैं नहीं जानता। भगवान् कृष्णकी क्रीडाभूमि यही मथुरा है या दूसरी, इसका भी कोई मेरे पास प्रमाण नहीं। पर हां यह मथुरा जरूर है।

इन्दुमती—यदि यहीं पर एक दिन विश्राम लिया जाय तो कैसा हो?

घनश्याम—चाहे कैसा ही हो, मगर विश्राम अवश्य लेना होगा।

इन्दुमती—तो फिर कहीं अच्छीसी सराय देखकर ठहरनेका प्रबन्ध करो।

घनश्याम—सरायकी क्या आवश्यकता है? यहांपर मेरे

मित्र एक बड़े भारी सेठजी रहते हैं उन्हींकी आलिशान कोठीमें हम ठहरेंगे।

इन्दुमती—कहां रहते हैं वे सेठजी?

घनश्याम—उनकी कोठी यहांसे बहुत ही समीप है। चलिये वहीं घोड़ोंको भी सुस्ताएंगे।

इन्दुमती—क्या हानि है (तीनों घोड़े चलाते हैं)

(दृश्य परिवर्त्तन)

(स्थान—एक महलके सामनेकी सड़क, घनश्यामजी, इन्दुमती और प्रणयिनी)

इन्दुमती—अभीतक तो तुम्हारी अगवानीके लिये कोई नहीं आया।

घनश्याम—जरा खबर तो हो जाने दीजिये फिर देखिये, कैसा दौड़ा आता है?

प्रणयिनी—इसकी अपेक्षा तो यही बेहतर है कि तुम्हीं अपने आनेकी सूचना उन्हें कर दो।

घनश्यामजी—(सोचकर) बात तो ठीक है। मैं ही उन्हें अपने आनेकी सूचना क्यों न कर दूं। (एक मनुष्य रास्तेसे निकलता है)

घनश्याम—एजी! एजी! ओ भले मानस! जरा सेठ नन्दीगुप्तको सूचना दे देना कि मैं आया हूं।

(वह आदमी उपेक्षासे घूरता हुआ चला जाता है
दूसरे आदमीका प्रवेश)

घनश्याम—अरे, ओ भाई! जरा सेठ नन्दीगुप्तको सूचना दे देना कि मैं घनश्याम विरूपाक्षका लड़का, इन्द्रपुरवाला, उमर ४० सालकी उनसे मिलने आया हूं।

(२) आदमी—(क्रुद्ध होकर) बड़े भलेमानस हो तुम।

(प्रस्थान)

प्रणयिनी—घनश्यामजी! आसार अच्छे नहीं दिखाई पड़ते। जरा तुम्हीं जाकर तलाश क्यों नहीं कर आते?

घनश्याम—हां ठीक तो है। मैं ही तलाश क्यों नहीं कर लेता?

(जाना और निराश भावसे वापस लौटना)

प्रणयिनी—क्यों घनश्यामजी! क्या हुआ?

घनश्याम—(निराशभावसे) क्या कहूं! स्वर्गवासी हो गया।

प्रणयिनी—कब?

घनश्याम—पन्द्रह साल हो गये।

प्रणयिनी—तब तुम्हारी पहचान कबसे थी?

घनश्याम—अजी! चालीस बरस पहले एकबार हमलोगोंकी मुलाकात हुई थी। बड़े सज्जन आदमी थे।

प्रणयिनी--(व्यंगसे) वाह तबतो खूब गहरी मुलोकात थी!

घनश्याम—क्या कहूं? स्वर्गवासी हो गया।

इन्दुमती—तो अब क्या किया जाय?

घनश्याम—उनका लड़का उपगुप्त यहीं समीप ही रहता है चलिये उससे मिलें। (प्रस्थान)

(दृश्य परिवर्तन)

(श्रेष्ठी उपगुप्तका एक मामूली मकान)

(उपगुप्त गा रहा है)

समझ मन ! सुख है छलकी खान ।

दुखमें सुखी समझ अपनेको, सुखमें दु:खी जान ।

दुख है जीवनभरका साथी, सुख है क्षणिक महान् । समझ ।

सुखतो केवल बनने आता पलभरका मिहमान ।

पर बेचारा अश्रु आंखमें रहता सतत समान । समझ ।

आसू देख आंखमें सुख हो जाता अन्तर्द्धान ।

तब भी दुक्ख छेड़ने आता हमदर्दीका तान । समझ ।

(घनश्याम, इन्दुमती और प्रणयिनीका प्रवेश)

विरूपाक्ष—क्यों भाई ! श्रेष्ठि उपगुप्त कहां हैं ?

उप—आइये, आइये क्या आज्ञा है ? मुझे ही उपगुप्त कहते हैं ।

विरूपाक्ष—श्रेष्ठि नन्दीगुप्तके पुत्र उपगुप्त !

उपगुप्त—जी हा, वही तो कहिये क्या आज्ञा है ?

विरूपाक्ष—(सन्देह सूचक स्वरमें) हूं । सो तो नहीं जान पड़ते भइया !

उपगुप्त—आप बिलकुल ठीक कहते हैं महाशय ! जिन लोगोंका इधर कई दिनोंसे आना नहीं हुआ है, वे मुझे कदापि नहीं पहचान सकते । क्योंकि मेरे पास अब न तो वह वैभव है न वह सम्पदा ।

घनश्याम—सो भइया उपगुप्त! तुम्हारी ऐसी हालत कैसे हुई? क्या व्यापारमें नुकसान हो गया?

उपगुप्त—नहीं महाशय! यह दरिद्रता जबर्दस्ती गले नहीं पड़ी है। यह दरिद्रता बहुत मूल्य देकर खरीदी गई है।

घनश्याम—सो कैसे?

उपगुप्त—एक दरिद्रता वह होती है जो व्यापारमें, जुआ चोरीमें हानि होने पर बलात्कार गले पड़ती है। यह दरिद्रता कालसे भी अधिक भयानक, हाहाकारसे भी अधिक करुणास्पद और आगकी लपटसे भी अधिक दाहक होती है। यह मनुष्यको पागल बना देती है, संज्ञाशून्य कर देती है। एक दरिद्रता वह होती है जो नाना प्रकारके दुर्व्यसनोंमें पड़ जानेसे प्राप्त होती है। यह दरिद्रता पश्चात्तापसे भी अधिक कठोर, हत्यासे भी अधिक विकराल, और उतरते हुए नशेसे भी अधिक सुस्त होती है। यह मनुष्यको निश्चेष्ट, अधम और किंकर्तव्यविमूढ़ बना देती है। लेकिन एक तीसरी प्रकारकी दरिद्रता और होती है जो परोपकारसे और दानशीलतासे प्राप्त होती है। यह दरिद्रता धर्मसे भी अधिक पवित्र, उपकारसे भी अधिक महत् और कर्तव्यसे भी अधिक उच्च होती है। इस दरिद्रताका आसन स्वर्गसे भी बहुत ऊपर है। बड़े बड़े राजाओंके मुकुट इस दरिद्रताके सम्मुख झुक जाते हैं। इस दरिद्रतामें भय नहीं है, शोक नहीं है, उच्छ्वास नहीं है। यह दरिद्रता गंगाके जलकी तरह जिसपर बरसती है, उसे ही पवित्र कर देती है। इस दरिद्रतामें मनुष्य बुझ नहीं जाता बल्कि और जल उठता है।

घनश्याम-हाय, हाय, तो क्या तुमने सब पैसा परोपकारमें ही चौपट कर डाला? भारी मूर्ख हो तुम!

उपगुप्त--महाशय, शायद आप उस महत्वको नहीं समझ सकते। आप नहीं जानते कि त्यागमें क्या आनन्द है? दानमें क्या सुख है। आप नहीं जानते कि रोते हुएके आंसू पोंछनेमें, सूखे होठोंमें हंसी पैदा करनेमें, प्यासेकी प्यास बुझानेमें और भूखेके मुखमें ग्रास देनेमें क्या आनन्द है। पापीको कृतज्ञ बनानेमें, नीचको पवित्र बनानेमें, मनुष्यको देवता बनानेमें संसारको स्वर्ग बनानेमें जो आनन्द है वह आनन्द क्या एक राज-राजेश्वरके मुकुटमें भी हो सकता है? स्वार्थत्यागसे होनेवाले महासुखके आगे संसारके सारे सुख फीके पड जाते हैं।

घनश्याम—मूर्ख, वह तो बहुत महत् है, मगर अब जो रोटी रोटीको मोहताज हो रहे हो, यह कितना महत् है। सारे सुखोंपर लात मारकर तुमने यह दुख मोल लिया, इससे बडी मूर्खता और क्या होगी?

उपगुप्त-महाशय, मैं तो यही समझता हूं कि दुःख बहुत ही महत् और सुख बहुत ही नीच होता है। दुःखके शुभ्र सरोवरसे करुणा, सहानुभूति, दया और प्रेमकी स्वच्छ धाराएं निकलकर सारे संसारपर अपना अमृतमय वर्षण किया करती है। लेकिन सुखके सागरसे अभिमान, कृतघ्नता, घृणा, व्यभिचार आदिकी भयानक लपटें निकलकर संसारको ग्रास दिया करती हैं। दुःख मनुष्यके हृदयमें पूर्णचन्द्रकी तरह उदय हो

कर करुणा और सहानुभूतिकी किरणें बरसाता है। जबकि सुख उसी आकाशमें सूर्य्यकी तरह उदय होकर, अभिमान और अत्याचारकी ज्वालामय किरणोंसे उसे दग्ध किया करता है। सुखकी छवि उत्कट होती हैं, पर दुःखकी छवि बहुत ही मधुर होती है।

इन्दुमती—श्रेष्ठीजी! आपका कथन बहुत ही सत्य है। आपके पवित्र दर्शन पाकर हमलोग कृतार्थ हुए।

उपगुप्त—श्रीमतीजी! आपके शुभागमनसे मेरा मकान पवित्र हुआ। आप कृपाकर भीतर उस कमरेमें जाकर ठहरिये। मेरी पत्नी आवश्यकतानुसार हमेशा आपकी सेवामें प्रस्तुत रहेगी।

(इन्दुमती और पुरुषवेशी प्रणयिनी भीतर जाती हैं)

(बाजारके अन्दर दस बीस सैनिक आते हैं)

१ आदमी—चक्रवर्ती सम्राट अशोकने कलिंग विजय कर लिया। पर राजा मृगेन्द्रका पुत्र जितेन्द्र हरिद्वारसे कहीं भाग गया है। अतएव जो कोई उसे पकडा देगा उसे दस हजार होन (एक प्रकारका सिक्का) पुरस्कार दिया जायगा। (ढोल पीटना)

घनश्याम—(स्वगत) ओफ़! गज़ब हो गया। हाय, कुंवर जितेन्द्र! (प्रगट) अच्छा श्रेष्ठीजी! अब मैं भीतर जाता हूं।

उपगुप्त—हां, हां, जाइये न। (घनश्याम जाता है)

(५, ७ सिपाहियोंके साथ एक सेठका प्रवेश)

सेठ—यही हैं पकड़ो।

१ सि०—उपगुप्त तुम्हारा ही नाम है?

उपगुप्त—हां।

१ सि—तुम्हारेपर इन्होंने अपने पावनेकी नालिश की है। अतएव या तो इनका पावना सूद सहित अदा करो। या जेल जाओ।

उपगुप्त—इस समय पावना अदा करनेकी मेरे पास गुञ्जाइश नहीं। जेल जानेको मैं तैयार हूं। जरा मुझे समय दीजिये। मैं अपनी स्त्रीसे मिल आता हूं। फिर अपनेको आपके सुपुर्द कर दूंगा। (प्रस्थान)

(दृश्य परिवर्तन)

(इन्दुमती प्रणयिनी और घनश्याम। इन्दुमती और प्रणयिनी फूट २ कर रो रही हैं।)

घनश्याम---महारानीजी! इस प्रकार रोनेसे क्या लाभ होगा। यदि पता लग गया तो और भी अधिक विपत्ति आनेकी सम्भावना है। अतएव हमें शोकको छोडकर जितेन्द्रकी रक्षाका प्रयत्न करना चाहिये।

प्रणयिनी---(एकदम प्रसन्न होकर) मां! मुझे बहुत ही उत्तम युक्ति सूझी है। यदि तुम उसे स्वीकार कर लो तो लोग जितेन्द्र भैयाको ढूंढना ही छोड दें।

इंदुमती—क्या युक्ति है? प्रणयिनी!

प्रणयिनी---यदि हूबहू जितेन्द्र हीकी शकलका कोई व्यक्ति पकड़वा दिया जाय तो क्या उनकी खोज बंद न होगी?

इन्दुमती—हो तो सकती है। पर पहिले तो जितेन्द्रकी सूरत

का कोई आदमी मिल ही कहां सकता है? यदि मिला भी तो कौन जान बूझकर अपनी जानको इन सैनिकोंके हवाले करेगा?

प्राणयिनी—मा, क्या मैं इस वेशमें हूबहू भैयाका प्रतिरूप नहीं दीखती? मैं सहर्ष अपने भाईकी रक्षाके लिए बौद्धोंकी कोपाग्निमें कूद पड़नेको तैयार हूं। बन्धुप्रेमके महासागरमें मैं अपने व्यक्तित्वका विसर्जन करनेको तैयार हूं।

इन्दुमती—यह नहीं हो सकता। मैं अपनी दुलारी कन्याको किसी तरह इन दुष्टोंके हाथमें नहीं दे सकती। उसकी रक्षा करना हमारा पहला कर्त्तव्य है।

प्रणयिनी—राजकन्या प्राणयिनीकी रक्षा करना तुम्हारा पहला कर्त्तव्य नहीं। तुम्हारा पहला कर्त्तव्य बुझते हुए हिन्दू धर्मकी रक्षा करना है। उसके बाद कलिङ्ग देशका उद्धार करना है। यदि जितेन्द्र भैय्या बच गये तो वे अवश्य इन बातोंको सम्पादित कर सकेंगे। बस, अब विलम्ब मत करो। घनश्याम जी! तुम डरो मत, राज कन्या प्राणयिनी अपनी रक्षा आप करना जानती हैं। उसके पास उसकी चिर संगिनी यह कटार मौजूद है। हर समयमें यह मेरी रक्षा करेगी। घनश्याम जी! शीघ्रता करो।

इन्दुमती—(आंखोंमें आंसू भरकर) बेटी! तुम धन्य हो! तुम्हारा बन्धुप्रेम धन्य है। भगवान्! प्रणयिनीकी रक्षा करना।

घनश्याइ—लेकिन यह कार्य्य किस प्रकार किया जाय?

(श्रेष्ठि उपगुप्तका प्रवेश)

उपगुप्त—महाशय, मुझे पूरा खेद है कि मैं आप लोगोंका अतिथि सत्कार न कर सका। बाहर मुझे पकड़नेके लिये पुलिस खड़ी है। मैं आपसे विदा होने आया हूं। आप यहां आनन्द पूर्वक रहिये। मेरी स्त्री आपकी पूरी खातिर रक्खेगी। अब मुझे विदा दीजिए।

घनश्याम—यह क्या श्रेष्ठिजी! पुलिस आपको क्यों गिरफ्तार कर रही है।

उपगुप्त—यहांके एक सेठका मुझे दो हजार होन देना है। उसके लिए उसने मुझपर नालिश कर दी है। इसी कारण पुलिस मुझे गिरफ्तार कर रही है।

प्रणयिनी—(प्रसन्न होकर) श्रेष्ठिजी! मैं कलिङ्ग देशका युवराज जितेन्द्र हूं। आप मुझे बौद्ध सैनिकोंके हाथ सौंपकर दस हजार होन प्राप्त कर लीजिए। जिसमेंसे दो हजार आप अपने ऋणदाताको देकर अपना छुटकारा कर लीजिए। मैं स्वयं सहर्ष गिरफ्तार होनेको तैय्यार हूं।

उपगुप्त—(आश्चर्य्यसे) आप कलिङ्ग देशके युवराज जितेन्द्र हैं! मेरी इस क्षुद्र कुटीके अहोभाग्य है। महाशय! मुझे क्षमा कीजिए, यदि आप ऐसा कह रहे हैं, तो मैं कह सकता हूं आपने मुझे पहचाना नहीं।

जितेन्द्र—उपगुप्त! मैं अपनी खुशीसे गिरफ्तार होना चाहता हूं।

उपगुप्त—युवराज! आप ऐसा स्वप्नमें भी न करें। बौद्ध

कारागार नरकोंसे भी अधिक भयानक होते हैं।······अच्छा तो युवराज ! अब मैं विदा होता हूं।

इन्दुमती—कितनी महत् आत्मा है ? यदि हर एक बौद्ध इस श्रेणीका हो जाय तो बौद्ध धर्म एक उज्वल धर्म हो जाय।

प्रणयिनी—पर अब अपनेको क्या करना चाहिए ? मेरी समझमें उपगुप्तकी स्त्री कुन्दनन्दिनीको प्रलोभन दिखाकर उससे यह काम करवाना उचित है। मैं कुन्दको बुला लाती हूं।

(प्रस्थान और कुन्दके साथ पुनः प्रवेश)

प्रणयिनी—कुन्द ! हमें बड़ा ही दुःख है कि, तुम्हारे स्वामी कारागार भेज दिये गये। हम चाहते हैं कि, किसी प्रकार उनकी मुक्ति हो जाय तो अच्छा है। बेचारे बड़े महा पुरुष हैं।

कुन्द—क्या कहूं, जो भाग्यमें होता है वही होता है। (आंसू पोंछती है)

प्रणयिनी—कुन्द ! तुम दुःख मत करो। देखो मैं एक ऐसा उपाय बतलाता हूं जिससे तुम सहजमें आज ही अपने पतिको छुड़ा सको। तुमने सुना होगा कि, कलिङ्ग देशके युवराज जितेन्द्रकी गिरफ्तारीके निमित्त दस हजार होनका पुरस्कार निकला है। वह जितेन्द्र मैं ही हूं। मैं अपनी खुशीसे अपनेको पकड़वा देना चाहता हूं। तुम मुझे पकड़वा दो और दस हजार होन प्राप्त कर अपने पतिको छुड़ा लो।

कुन्द—ना, मुझसे यह नहीं हो सकता। महाशय ! शायद आप यह भूलते हैं कि, मैं श्रेष्ठि उपगुप्तकी भार्य्या हूं।

प्रणयिनी—कुन्द ! देखो यदि तुमने मुझे नहीं पकड़वाया तो मैं स्वयं अपनेको पकडवा दूगा ! उससे यह होगा कि, मैं तो पकडा ही जाऊंगा, पर तुम्हारे पति भी न छूट सकेंगे। बोलो क्या कहती हो ?

कुन्द—(कुछ सोचकर) यदि आपका इतना ही आग्रह है तो मैं तैय्यार हूं। पर युवराज ! यह आप बहुत बुरा कर रहे हैं।

जितेन्द्र—अच्छा तो मां ! मैं जाता हूं।

(दोनों लिपटकर रोते हैं, फिर प्रणयिनी कुन्दके साथ चली जाती है)

इन्दुमती—हाय ! मेरा भाग्य भी कैसा है ? पतिका कुछ पता नहीं, पुत्रको पकडनेके लिए पुरस्कार निकल रहा है और पुत्रीको हाथोंसे निकाल दिया। घनश्यामजी ! जो होना होगा सो होगा, तुम प्रणयिनीको फेर लाओ। मेरी प्रणयिनीको लौटा लाओ।

हाय बेटी !!! (मूर्च्छित हो जाती है)

घनश्याम—(सचेत करके) महारानीजी ! शान्त हूजिए। (आंसू पोंछता है)

(कुन्दके साथ उपगुप्तका प्रवेश)

उपगुप्त—(कुन्दसे) युवराज कहां है ?

कुन्द—(भयसे कांपकर) युवराज अपनी इच्छासे गिरफ्तार हो गये। उनसे दस हजार होन प्राप्त हुए, उनमेंसे दो हजार सेठको दे कर आपको छुडाया, शेष आठ हजार ये हैं। (आठ तोडे रख देती हैं)

उपगुप्त—(घृणासे उनके लात मारकर) सर्वनाश ! कुन्द ! तुमने सर्वनाश कर डाला ! आजतकके मेरे जीवनमें कलङ्क लगा दिया । तुमने वह कार्य्य कर डाला, जिसे मनुष्य तो क्या पिशाच भी नहीं कर सकते, क्या इतने दिन मेरे साथ रहकर तुमने यही सीखा ?

इन्दुमती—श्रेष्ठिजी ! इसमें इनका कोई दोष नहीं है, युवराजने स्वयं होकर, इच्छा पूर्वक अपनेको पकड़वा दिया है ।

कुन्द—केवल पतिप्रेमसे प्रेरित होकर मैंने यह कार्य्य किया है ।

उपगुप्त—प्रेम ! यह प्रेम है ? वह प्रेम जो एकके सुखके लिए दूसरेको दुःख देता है, वह प्रेम जो वासनाको उत्तेजित करता है, स्वार्थके सिरपर मुकुट पहनाता है, अत्याचारके हाथमें राज दण्ड सौंपता है, वह प्रेमजो लालसाकी लगामको छोड़ देता है, काम वासनाको प्रबल करता है, वह प्रेम, प्रेम नहीं मोहका एक उद्दाम उच्छ्वास है । जो मनुष्यको पिशाच बना देता है । वास्तविक प्रेम कर्त्तव्यको कभी नहीं भूलता । वह आकाशकी तरह उन्मुक्त और गंगाजलकी तरह स्वच्छ होता है । उस प्रेमका प्रवाह केवल एक पर ही नहीं, सारे विश्वपर अबाधित रूपसे बहता रहता है, कुन्द ! आज तुमने एक बहुत भारी पाप किया है । यदि अब भी मनुष्यत्व नहीं गया है, तो उसका प्रायश्चित्त करो । इस पापमय पंकसे निकल कर फ़िरसे मनुष्य बननेकी कोशिश करो ।

कुन्द—स्वामी ! इसबार क्षमा करो । अब मैं सचेत हो गई ।

उपगुप्त—खूब विचार कर लो । सावधान हो गई ?

कुन्द—स्वामी ! खूब सोच लिया । इस निद्य कार्य्यने मुझे संसारसे एकदम विरक्त कर दिया । श्रेष्ठिजी ! अब मैं आपकी पत्नी नहीं रही, अब मैं आपकी शिष्या हूं ।

उपगुप्त—कुन्द ! आज मैं अपनेको धन्य समझता हूं । मैं तो तुम्हें क्या उपदेश कर सकता हूं । पर हां, आचार्य्य मोग्गली पुत्रतिष्यके पास तुम जाओ । वे आजकलके सबसे बड़े महात्मा हैं । उनसे दीक्षा ग्रहणकर तुम वहींपर अपने जीवनको पवित्र बनानेकी कोशिश करो । मैं अभी दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता । इस समय मेरा सबसे पहला कर्त्तव्य युवराज जितेन्द्रका उद्धार करना है । मैं इसी समय पाटलिपुत्र जाता हूं । तुम भी युवराज जितेन्द्रको मत भूल जाना ।

कुन्द—जहांतक युवराज न छूटेंगे, मेरी आकुलता न जायगी ।

उपगुप्त—अच्छा तो अतिथि महाशय ! आज्ञा दीजिए ।

घनश्याम—श्रेष्ठिजी ! हम भी आपके साथ पाटलिपुत्र चलते हैं । आप इस तीसरे अश्वपर आरूढ़ हो जाइए ।

उपगुप्त—अच्छा तो कुन्द ! अब मुझे बिदा करो । (आंसू पोंछता है)

कुन्द—(भर्राई आवाजसे) गुरु महाराज ! मैं आपको अन्तिम नमन करती हूं । मुझे ... .मा. ....कुछ नहीं .. .जाइए .. ..
(मुंह फेरकर रोती है) (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य
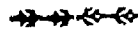
स्थान—कलिङ्ग देशका एक जङ्गल

(राजा मृगेन्द्र)

मृगेन्द्र—चन्द्रमा ! अग्निकी वर्षा करो ! बादलो ! पत्थर बरसाओ ! बिजली जोरसे कड़क उठ ! भूकम्प ! प्रचण्ड वेगसे आकर इस पृथ्वीको चीर दे । और मैं ? मैं उस महाप्रलयके बीचमें खड़ा होकर वह दृश्य देखूं । भगवति ! मैय्या ! तुमने मनुष्यकी भी विचित्र सृष्टिकी थी । पिशाचिनी ! तुमने मनुष्य को इतना अकृतज्ञ बनाया ।

(एक सन्यासीका प्रवेश)

सन्यासी—मृगेन्द्र ! शान्त होओ ।

मृगेन्द्र—(अनसुनी करके) सृष्टि अगर रहे तो उसपरसे मनुष्य लोप हो जायं । मनुष्य अगर रहे तो उनमेंसे मनुष्यत्व चला जाय । प्रेम अगर रहे तो काम वासनामें रहे, बन्धुत्व अगर रहे तो ईर्ष्यामें रहे । उपकार यदि रहे तो कृतघ्नतामें रहे, हाः हाः हाः मनुष्य इतना कृतघ्न होता है !

सन्यासी—मृगेन्द्र ! होनीके फेरमें पड़े हुए मृगेन्द्र ! शान्त होओ ! ईश्वरका विचार करनेकी चेष्टा मत करो । वह परम दयाशील है ।

मृगेन्द्र—(अट्टहास करके) हाः हाः हाः ! खूब कहा सन्या-

सीजी! परम दयाशील है—अवश्य परम दयाशील है, जो कृतघ्न है, जो लम्पट है, जो डाकू है, जो विश्वास घातक है, उसपर यह ईश्वर हमेशा अपना कृपापूर्ण हाथ फेरा करता है। मगर जो पुण्यात्मा है, जो परोपकारी है, उसपर यह ईश्वर हमेशा अपनी कठोर दृष्टि रखता है। जो उससे डरता है, उसे वह अधिकाधिक डराता है। नहीं तो विश्वास घातिनी प्रमिला कलिंग देशकी रानी हो, और मैं और मेरी इन्दुमती जो हमेशा पापसे डरते रहते हैं, दर २ भटकते फिरें।

सन्यासी—मृगेन्द्र! मैं मानता हूं तुम बड़े धार्मिक और बड़े पुण्यात्मा हो। मगर मैं यह पूछता हूं कि, तुम धर्म और पुण्य करते किसलिए हो?

मृगेन्द्र—इसलिए कि, हमें इस लोकमें और परलोकमें सुख मिले।

सन्यासी—मृगेन्द्र! यदि ऐसा है तो तुमने अवश्य धर्म और पुण्यको खरीदने और बेचनेकी वस्तु समझ रखा है। मूर्ख! तुम धर्म करते अवश्य हो, मगर उसका महत्व नहीं समझते। क्या वह धर्म धर्म है, जो एक स्वार्थ वासनासे प्रेरित होकर किया जाता है, वह तो एक क्षुद्र स्वार्थसेवा है। मानो तुम किसीको कर्ज़ दे रहे हो, जिसे इस लोक या परलोकमें सूद सहित वसूल करोगे। इसमें धर्मकी बात ही कौनसी रही? यह कार्य्य तो सूम और सूदखोर बनिये भी किया करते हैं।

मृगेन्द्र—तब धर्म किस लिए किया जाता है?

सन्यासी—धर्म इस उद्देश्यसे नहीं किया जाता कि, इससे हमें स्वर्ग लाभ होगा। धर्म इस उद्देश्यसे नहीं किया जाता कि, इससे हम सम्पत्ति शाली होंगे। धर्म इस उद्देश्यसे नहीं किया जाता कि, इसका हमें प्रत्युपकार मिलेगा। प्रत्युत धर्म इसलिए किया जाता है कि, उसे किये बिना हम रह ही नहीं सकते। धर्म तभी धर्म है जब वह सुख और दुखका विचार नहीं करता, जब वह सम्पत्ति और विपत्तिके दारुण चक्रोंमें भी ध्रुवके समान स्थिर रहता है। धर्मका पुरस्कार हमेशा सुख और सम्पत्ति नहीं होता। कभी २ धर्मके लिए घोर दु.ख भी उठाना पड़ते हैं। किन्तु उस दुःखके अन्दर जो गौरवमय सुख छिपा रहता है, उसके आगे संसारकी सारी सम्पदाएं शीश झुकाती हैं, सच्चा धार्मिक किसी पुरस्कारके लोभसे धर्मको प्यार नहीं करता, वह धर्मका गौरव देखकर उससे प्रेम नहीं करता, प्रत्युत उसके सौन्दर्य्यको देखकर वह उसे गले लगाता है।

मृगेन्द्र—(स्वगत) ठीक तो है। (प्रगट) सन्यासीजी! आपका कथन मेरे हृदयपर अधिकार करता जा रहा है। कृपया आप मुझे कुछ उपदेश करिये, जिसकी सहायतासे मैं अपना कर्त्तव्य निश्चित कर सकूं।

सन्यासी—मृगेन्द्र! अपने कर्त्तव्यको दृढ करनेके लिए आत्मिक बलकी आवश्यकता हुआ करती है। तुममें आत्मिक बलका बहुत अभाव है। तुम स्त्रियोंसे भी गये बीते हो। सीता-देवीमें जो कष्ट पडे हैं, सावित्रीने जिन दुःखोंका अनुभव किया

है, उनके सम्मुख तुम्हारे ये कष्ट किस श्रेणीमें हैं ? इन तुच्छ कष्टोंसे ही तुम उन्मत्त हो गये हो। मृगेन्द्र ! वह मनुष्य मनुष्य नहीं जिसमें कष्ट सहनकी शक्ति नहीं। मनुष्य दुःखोंकी अग्निमें पड़कर घासकी तरह जल नहीं जाता, प्रत्युत स्वर्णकी तरह चमक उठता है। दुःखोंकी लगातार वर्षामें भी वह आगकी तरह बुझ नहीं जाता प्रत्युत बिजलीकी तरह चमक उठता है। मृत्युका निबिड़ अन्धकार उसे अन्धा नहीं बना देता, प्रत्युत उसके मार्गको और भी प्रकाशित कर देता है।

मृगेन्द्र—सच है महात्मन ! वास्तवमें मैं बहुतही दुर्बल हूं। कृपया आशीर्वाद दीजिये, जिससे मैं अपने कर्त्तव्यपर बढ़ता जाऊं मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे सारे बाधा और विघ्न मेरे रास्तेसे हट जायं, मुझे आशीर्वाद दीजिये, जिससे मैं अपने देश और धर्मका उद्धार कर सकूं।

सन्यासी—मृगेन्द्र ! मैं ईश्वरसे प्रार्थना करूंगा कि, वह तुम्हें सफलता दे। पर यदि देवेच्छासे तुम्हें असफलता भी मिले तो उससे घबराना मत। कोशिश करो-उद्योग करो। आज भी तुम्हारे नाममें वह जादू है, जिसके प्रतापसे हजारों नगी तलवारें अन्धकारमें बिजली तरह चमक उठेंगी। मगर मृगेन्द्र ! याद रक्खो कि बदला लेनेकी इच्छासे कभी कोई कार्य्य मत करना। प्रमिलाने तुम्हारे साथ अनिष्ट अवश्य किया है, फिर भी उसे क्षमा करनेमें ही अपना गौरव समझना। याद रक्खो प्रतिहिंसाका उतना महत्व नहीं है, जितना क्षमाका। अच्छा तो मैं अब चलता हूं।

मृगेन्द्र—महात्मन्! आपका उपदेश और आशीर्वाद हमेशा मेरे मार्गको प्रकाशित करता रहेगा। अच्छा तो महात्मन्! मृगेन्द्र चरणोंमें अभिवादन करता है। (चरणोंमें नमस्कार करता है)

सन्यासी—ईश्वर तुम्हें सफलता दे।

(एक ओरसे सन्यासी और दूसरी ओरसे मृगेन्द्र जाते हैं।)

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

स्थान—एक छोटे ग्रामकी सराय

(प्रमिला)

प्रमिला—मेरा जीवन भी एक पहेली मय है। महत्वाकांक्षाके फेरमें पड़कर मैंने एक भयङ्कर ज्वालाका सूत्रपात कर दिया है। मैं स्वयं नहीं जानती कि मैं इस ज्वालामें स्वयं जलना चाहती हूं या दूसरोंको जलाना चाहती हूं। मैं स्वयं नहीं जानती कि मैं खुद मरना चाहती हूं या दूसरोंको मारना चाहती हूं। मैंने महत्वाकांक्षाकी जहरीली मदिराका पान किया है, क्षमताके ऊंचे शिखरपर मैं पहुंच चुकी हूं।......

(एक बौद्ध भिक्षुकका प्रवेश)

प्रमिला—तरुण भिक्षुक! आओ प्रमिला, तुम्हारा स्वागत करती है।

भिक्षुक—इस शिष्टाचारकी क्या आवश्यकता है? प्रमिला रानी!

प्रमिला—तरुण भिक्षुक! तुम कौन हो? तुम्हारे सौम्य मुखपर छाई हुई मुस्कराहटकी रेखा, गङ्गाजल पर पड़ती हुई चन्द्रकिरणोंसे भी अधिक सुन्दर मालूम होती है। तुम्हारी वाणी वीणाकी झङ्कारसे भी अधिक मधुर मालूम होती है और तुम्हारा चलना आह! (एक तीक्ष्ण कटाक्ष करती है।)

भिक्षुक—प्रमिला! बस बहुत हो चुका, इससे अधिक सुननेकी मुझमें ताकत नहीं है। मैं कौन हूं, कहांसे आया हूं, या मेरा उद्देश्य क्या है, इन बातोंका कोई उत्तर नहीं है। बस इतना ही समझ रक्खो कि मैं एक बौद्ध भिक्षुक हूं और तुम्हारे साथ पाटलिपुत्र चल रहा हूं।

प्रमिला—तरुण भिक्षुक! तुम्हारा नाम क्या है?

भिक्षुक—मैंने हालमें ही दीक्षा ली है, इसलिए अभीतक मैंने अपना कोई नाम निर्द्धारित नहीं किया। न उसकी अभी कोई आवश्यकता ही है। क्योंकि मैंने हमेशाके लिये तो दीक्षा ली नहीं है, केवल एक गूढ उद्देश्यको सिद्ध करनेके निमित्त ही यह प्रयास किया है। ज्योंही मेरा उद्देश्य सिद्ध हुआ, त्यों ही मैं यह वेष छोड़ दूंगा।

(दासी कुरङ्गीका प्रवेश)

कुरङ्गी—प्रमिला रानी! कोई एक गुप्त बात कहना है। इधर आओ तो कहूं।

(प्रमिला जाती है कुरंगी उसके कानमें कुछ कहती है, प्रमिला चौंक उठती है।)

प्रमिला- (बेसुध भावसे) क्या कहा ? रानी इन्दुमती (सम्हलकर) अच्छा चल मैं चलती हूं। तरुण भिक्षुक! मुझे जरा क्षमा करना। किसी जरूरी कामके आ पडनेसे मैं कुछ समयके लिए आपसे . ना तुमसे विलग हो रही हूं। (दोनों जाती हैं)

भिक्षुक—अवश्य इसमें कोई रहस्य है। नहीं तो प्रमिला उस बातको सुनते ही क्यों चौंक उठी ? चौंकते ही उसने रानी इन्दुमतीका नाम क्यों लिया ? चलूं, जरा छिपकर देखूं क्या रहस्य है (प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

पांचवां दृश्य

स्थान—उसी सरायका दूसरा हिस्सा

(महारानी इन्दुमती, घनश्यामजी, प्रमिला और कुरंगी)

इंदुमती—प्रमिला! साफ साफ़ क्यों नहीं कहती ! किस प्रकार तो तू कलिंग देशकी रानी हुई। किस प्रकार कलिंग विजय हुआ और कलिंग देशका वह तप्त सूर्य्य इस समय कहां है !

प्रमिला—क्या कहूं देवीजी ! आपके मंत्रीके विश्वासघातसे ही कलिंग देशके भाग्य फूट गये। कलिङ्ग देशका वह चमकता हुआ सौभाग्य मणि अब इस असार संसारमें नहीं है। हाय ! (बनावटी आंसू पोंछती है।)

इन्दुमती—क्या कहा ! फिर कहो तो ! क्या कलिंगका सौभाग्य रवि अस्त हो गया ! हाय देव ! (मूर्च्छित हो जाती है)

घनश्याम—हाय देव ! यह क्या किया ! (मूर्च्छित हो जाता है) ।

प्रमिला—(अट्टहास करके) होओ ! मूर्च्छित होओ । मरो मृगेन्द्र ! इस उपेक्षित छोकरी प्रमिलाके खेल देख । कुरंगी ! इन्हें जरा चैतन्य करना तो ।

(कुरंगी दोनोंको जल छिड़ककर सावधान करती है ।)

प्रमिला—(वैसा ही भाव बनाकर) देवीजी ! अब वृथा शोक करनेसे क्या लाभ ? भूत पूर्व महाराज स्वर्गमें बैठे आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे ।

इन्दुमती—हां ठीक तो है । प्रमिला ! तुमने मुझे याद दिलाकर बहुत अच्छा किया । घनश्यामजी ! शीघ्र चिता तैयार करो ।

घनश्याम—देवीजी ! पर क्या आजका यह सहगमन सार्थक है ? महाराजको स्वर्गवासी हुए पन्द्रह बीस दिन हो गये । अब इस समय उनका सहगमन तो ठीक नहीं मालूम होता ।

इन्दुमती—(स्वगत) ठीक तो है, इतने दिनोंके पश्चात् उनका सहगमन यथोचित तो नहीं । इधर अभी जितेन्द्र भी बालक है, उसको पकड़नेके लिए विज्ञापन जारी हो रहे हैं, प्रणयिनी भी दुष्ट भिक्षुओंके हाथमें जा चुकी है, उसे भी छुड़ाना है पर नहीं मैं इन बातोंको क्यों सोच रही हूं । लोक प्रथाके

अनुसार विना जले हुए मेरा निस्तार नहीं। (प्रगट) घनश्या-मजी! इन तर्कोंका इस समय कोई मूल्य नहीं है। महाराज! मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, तुम शीघ्र चिता तैयार करो।

(घनश्यामजी बड़े ही दुःखित भावसे चिता प्रज्वलित करते हैं)

(श्रेष्ठी उपगुप्तका प्रवेश)

उपगुप्त--घनश्यामजी! यह क्या रहस्य है?

घनश्यामजी—श्रेष्ठीजी! क्या कहूं हमारे भाग्य फूट गये कलिंग देशका सौभाग्य रवि अस्त हो गया। हिन्दू कुलदीपक महाराज मृगेन्द्र अब इस संसारमें नहीं है। हमारी महारानी साहिबा भी अब महाराजका सहगमन करने स्वर्ग जा रही हैं।

उपगुप्त--क्या महाराज मृगेन्द्र स्वर्गवासी हो गये? हाय! हिन्दूधर्मका एक चमकता हुआ सितारा लोप हो गया! (महा-रानीके पैर पकड़कर) देवी! आप यह पापकर्म करनेपर प्रवृत्त न हूजिये। जान बूझकर आत्महत्याका महापाप न कीजिये।

प्रमिला--अरे! यह कौन मूर्ख सतीके पवित्र कार्य्यमें बाधा डालनेके लिए उपस्थित हुआ है। हटाओ उसे यहांसे।

इन्दुमती---प्रमिला! जरा जबान सम्हालकर बात किया करो। (उपगुप्तसे) श्रेष्ठीजी! यह नादान लड़की है, इसके कहनेका बुरा न मानिएगा। आपने इसे जो आत्महत्या बत-लाई यह आपकी भूल है? श्रेष्ठीजी! यह आत्महत्या नहीं है, यह आत्मोत्सर्ग है। इसी उत्सर्गके वश होकर पतङ्ग दीप-

ऊपर अपनेको बलिदान कर देता है, इसी उत्सर्गके वश होकर एक देशभक्त मातृभूमिपर अपनेको न्योछावर कर देता है और इसी उत्सर्गके वश होकर एक हिन्दू रमणी अपने पतिके शवके साथ हँसते हँसते भस्म हो जाती है। यदि आत्महत्याके बराबर कोई पाप नहीं तो आत्मोत्सर्गके बराबर भी संसारमें कोई धर्म नहीं है। श्रेष्ठीजी! बस अब आप मुझे न रोकें।

उपगुप्त—केवल इसी विश्वासपर कि, स्वर्गमें मेरा पति मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा, जीतेजी जल जाना भारी मूर्खता है। जिस प्रकार सागरमें अनायास ही दो लकड़िया मिलकर अलग हो जाती हैं, उसी प्रकार इस संसार सागरमें पति और पत्नी मिल जाते हैं, और फिर अलग हो जाते हैं। फिरसे उनका मिलन होना अशक्य है।

इन्दुमती—क्षमा कीजिए, श्रेष्ठीजी! हिन्दूधर्म इस सिद्धान्तका कायल नहीं है। वह पति और पत्नीके सम्बन्धको क्षण स्थायी नहीं मानता। वह पति और पत्नीका सम्बन्ध चिर स्थायी मानता है। उसकी नींव ही विश्वास पर स्थित है। श्रेष्ठीजी, यह संसार धर्म और विश्वास पर ही तो टिका हुआ है। यदि विश्वास न होता तो इस अधम संसारमें देखने योग्य और पदार्थ ही क्या रहता। इसी विश्वासके वश होकर माता अपने सन्तानपर, भाई अपने भाईपर, और धर्मीअपने धर्मपर अपनेको बलिदान कर देता है! यह विश्वास आत्मासे भी अधिक तेजस्वी और पुण्यसे भी अधिक उज्वल है श्रेष्ठीजी!

बस, अब कृपाकर तर्क न कीजिये। और मुझे अपना कर्त्तव्य पालन करने दीजिए।

(चिताकी ओर बढ़ती)

उपगुप्त—देवीजी! सुनिये। (आगे बढ़ता है)।

प्रमिला—चुप रह नराधम!

(इन्दुमती चितामें कूद पड़ती है)

प्रमिला—(कर्कशस्वरमें) इन्दुमती! जा, स्वर्गमें जा यातो तेरा पति वहांपर तेरी राह देखता हुआ मिलेगा। अथवा कुछ काल तक तूही उनकी प्रतीक्षा करना, शीघ्र ही तुम्हे आ मिलेगा कलिङ्गदेशकी रानी! मृगेन्द्रको मेरी ओरसे कहना कि, तुम्हारी उपेक्षित प्रमिला कलिंग देशकी रानी हो गई।"

(इन्दुमती भीतरसे) श्रेष्ठीजी! मुझे बचाओ।

मैं मरना नहीं चाहती! अरे कोई मुझे बचाओ।

(उपगुप्त और धनश्याम आगे बढ़ते हैं)।

प्रमिला (तलवार खींच कर) खबरदार! यदि बचानेकी तनिक भी चेष्टा की तो?

(तेजीके साथ दौड़ते हुए बौद्ध भिक्षुकका प्रवेश)

(वह एक दम आकर इन्दुमतीको चिताके बाहर कर देता है प्रमिला स्तब्ध हो देखती रहती है)।

प्रमिला—तुम कौन हो?

भिक्षुक—तरुण भिक्षुक।

प्रमिला—तुम किसकी आज्ञासे यह कार्य्य कर रहे हो?

भिक्षुक—(हृदयपर हाथ रख कर) अपनी आत्मा आभासे !

प्रमिला—जानते हो मैं कलिंग देशकी रानी हूं ।

भिक्षुक—मगर मैं उसमें भी बढ़कर हूं। मैं मनुष्य हूं। (मुग्ध दृष्टिसे देखती हुई प्रमिला चली जाती है। सब लोग चले जाते हैं। उपगुप्त औषधि लेने जाते हैं)।

घनश्याम—(बारीक निगाहसे देखकर धीरेसे) कौन युवराज जितेन्द्र !

जितेन्द्र—बिलकुल ठीक ! पहचान लिया घनश्यामजी ! यदि मैं कुछ देर और न आया होता तो गजब हो जाता। अब तुम देवीका इलाज करके उन्हें मेरा हाल कह देना। और कहना कि मेरी ओरसे वे निश्चिन्त रहे। मुझे इस वेषमें कोई नहीं पहचान पाता। मैं इसी वेषमें प्रमिलाके साथ सफ़र कर रहा हूं। दूसरी बात जो कहना है वह यह कि, पिताजीकी हत्याका समाचार इस समय चारों ओर फैल रहा है। मगर मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूं कि अभी पिताजी जीवित है। माताजी मैं कहना कि, वे चार मास तक और प्रतीक्षा करें, यदि इस बीच पिताजीका पता लगा तो ठीक, अन्यथा जैसी उनकी इच्छा हो करें। अच्छा तो अब मैं जाता हूं।

छठा दृश्य

समय—आधी रात

स्थान—बौद्धभिक्षुकका शयनागार

(बौद्ध भिक्षुक सोया हुआ है)

(धीरे २ कई सुन्दरियोंके साथ अपूर्व श्रृंगार किये हुए और हाथोंमें रोशनीके झाड़ लिये प्रमिला आती है)।

प्रमिला—(धीमे स्वरसे) सुन्दरियों! कोई मधुर सङ्गीत गाओ। ऐसा संगीत गाओ, जिससे यह निद्रामग्न युवक मतवाला हो उठे। ऐसा संगीत गाओ, जिसकी मीठी तानसे स्वर्गका नन्दनकानन मृत्यलोकमें उतर आये, ऐसा संगीत गाओ जिसके प्रतापसे मुरझाये हुए फूल खिलजायं। ऐसा संगीत गाओ, जिसकी मीठी तानसे कोयल असमयमें ही कुहुक उठे। ऐसा संगीत गाओ, जिसके जोरसे संसारका हाहाकार मूर्च्छित होकर गिर पड़े। गाओ, सखियों! कोई अच्छा संगीत गाओ।

(सब गाती और नाचती हैं)

आओ, आओ सहेली! रिझावें इन्हें। आओ०
प्रेम डोरका बाध हिंडोला, उसमें आज झुलावें इन्हें। आओ०।
मन मान्दिरकी मूर्ति बना, भूतलपर स्वर्ग दिखावें इन्हें। आओ०।
जीवन धन सब अर्पणकर, प्रेमीपर मरना सिखावें इन्हें। आओ०।

(भिक्षुक चौंककर उठ बैठता है।)

भिक्षुक—हैं! यह सब क्या है? क्या यह स्वर्ग है? यहां मुझे कौन लाया? यह अपूर्व सुन्दरी कौन है?

प्रमिला—तरुण भिक्षक! तुमने क्या कभी स्वर्ग देखा है?

भिक्षक—कौन प्रमिला रानी? तुम यहां कैसे! क्या यह सब प्रपञ्च तुम्हाराही रचा हुआ है?

प्रमिला—हां।

भिक्षुक—क्यों ?

प्रमिला—इस लिए कि, मैं तुम्हें चाहती हूं। आजतक विश्वभरमें मैंने किसीको प्रेमकी दृष्टिसे न देखा। सबसे पहले तुम्हीने मेरे मनको मुग्ध किया हैं तुम मेरे हृदयेश्वर हो ! प्यारे देखो, इस विशाल विश्वकी ओर आंख उठाकर देखो, इस खिली हुई चांदनीकी ओर देखो, येसब किस लिए बनाये गये हैं ? क्या इनका कोई उद्देश्य नहीं है ? नहीं ये सब मनुष्यके विलासके लिए बनाये गए हैं। इनका उपयोग करना ही हम लोगोंका धर्म हैं। आओ प्यारे ! कितने दिन जीवन है ? आओ भोग कर लो!

भिक्षुक—प्रमिला ! तुम कह क्या रही हो ?

प्रमिला—क्यों क्या आश्चर्य हो रहा है ? अवश्य आश्चर्य होने की बात है। कलिंग देशकी रानी प्रमिला एक भिक्षुकपर मुग्ध हो, यह अवश्य आश्चर्य्यकी बात है। मगर प्रमिलाका कौन सा कार्य्य साधारण होता हैं ? उसके हर एक कार्य्यमें कुछ न कुछ आश्चर्य्य हुआ ही करता है। युवक मैं तुम्हें कलिंग देशका सिंहासन दिला दूंगी।

भिक्षुक-बुरी राहसे चलकर मैं तीन लोकका राज सिंहासन भी नहीं चाहता।

प्रमिला—न सही। पर इस सौन्दर्य्यकी तो तुम उपेक्षा नहीं कर सकते। (सिरपरसे कपड़ा हटा देती है।

भिक्षुक—हाय प्रमिला! तुम यह क्या कर रही हो। तुम अपने सौन्दर्य्यका इस प्रकार दुरुपयोग करती हो! हाय! जो सौन्दर्य्य पवित्रतासे भी अधिक उज्वल, और विश्वाससे भी अधिक स्वच्छ है, जिस सौन्दर्य्यके कोमल स्पर्शसे पवित्रताके टूटे हुए तार भी झन झना उठते हैं। जिस सौन्दर्य्यको देखकर पक्षी स्वच्छन्द रूपसे गा उठता है, ज्ञान पागल हो उठता है भक्ति घुटने टेककर प्रणाम करती है। उसी सौन्दर्य्यका तुम दुरुपयोग कर रही हो। जो सौन्दर्य्य उज्वलताका देव मन्दिर है, उसे तुमने कामका गढ़ समझ रक्खा है। जहां पर मातृत्वका पवित्र झरना कल कल नाद करता हुआ वहता है वही तुमने कामका घृणित कीचड़ भर रक्खा है।

प्रमिला—युवक! यह केवल सैद्धान्तिक बाते हैं। यह सौन्दर्य क्या व्यर्थ होनेके लिए बनाया गया है। क्या इसका कुछ उद्देश्य नहीं है? नही, इस सौन्दर्य्यकी सृष्टिमें अवश्य विश्व नियन्ताका कुछ उद्देश्य है युवक! यह सौन्दर्य्य उपभोग करनेके लिये ही बनाया गया है। बोलो अब भी समय है।

(मतवाला कर देनेवाला सुगन्धित द्रव्य फेंकती है।)

भिक्षुक (स्वगत) यह क्या शरीरमें एक तरहकी उन्मत्तता सी छा गई है। आखे मिली जारही हैं (कुछ बेसुध सा होकर) प्रमिला मैं तुम्हे चाहता हूं। तुम मेरी हृदय देवी हो।

प्रमिला—(प्रसन्न होकर) यही तो तुम्हारे योग्य बात है। युवक! तुम सच्चे प्रेमिक हो। लेओ इस प्रेमकी स्मृतिमें

प्रमिलाकी इस भेंटको स्वीकार करो। (प्रमिला एक चमकता हुआ हार निकालती है।)

भिक्षुक—(हार देखकर चौंक उठता है) हाय! हाय! मैंने यह क्या किया? इन्दिरा! मुझे क्षमा करना। मैं महा पापी हूं। भारी विश्वास घातक हूं। मैंने तुम्हारे अटल विश्वासकी छातीमें लात मारी है। मैंने तुम्हारे उस अखण्ड प्रेमको पैरों तले कुचल डाला है। मैंने तुम्हारी दिव्य स्मृतिको विस्मृतिके सागरमें विसर्जन कर दिया है। मैंने तुम्हारे इस रत्नहारका अपमान किया है, पर .ना...अब नहीं। अब मैं सम्हल गया हूं। परमात्मा! तुम्हें अनेक धन्यवाद है। तुमने मुझ भूले हुएको रास्ता बतला दिया। (प्रमिलासे) प्रमिला! बस, अब तुम मेरी आशा छोड दो। मुझे अपना हृदय किसी दूसरेको देनेका अधिकार नहीं। इसपर दूसरेका अधिकार हो चुका है। बस अब तुम्हारे समझानेका कुछ फल न होगा। राक्षसी! तूने तो मुझे पथ भ्रष्ट किया ही था।

प्रमिला—तरुण भिक्षुक! मानजा! तू व्यर्थ ही प्रमिलाके कोपका शिकार मत हो। प्रमिला किसीकी उपेक्षा सहन नहीं कर सकती। जिसपर वह पसन्द हुई है, या तो उसे राजा ही बनाकर छोड़ेगी, या नरकके द्वारका मेहमान बनाकर ही मानेगी। वह स्वच्छन्द है, वह बाधाहीन है।......जानता है तेरी इस उपेक्षाका फल क्या होगा?

युवक—मृत्युदण्ड! इससे अधिक कुछ नहीं।

प्रमिला—शायद तू हंसी कर रहा है ?

युवक—यह बात तुम परीक्षा करके देख सकती हो।

प्रमिला—देख अब भी मानजा।

युवक—(दृढ़तासे) कदापि नहीं।

प्रमिला—अच्छा तो ले अपने कियेका फल भोग।

(प्रमिला और उसके साथकी स्त्रियां कटार खींचकर उसपर झपटती हैं, इतनेहीमें दरवाजा टूटता है, एक परम शान्त योगीश्वर शान्तिका इशारा करते हुए प्रवेश करते हैं। प्रमिला वगैरह सन्न होकर खड़ी हो जाती हैं। युवक शिर झुकाकर प्रणाम करता है।)

(प्रमिला और उसकी सखियां धीरे २ आंख बचाकर चली जाती हैं)

साधु—युवक! तुम धन्य हो! तुम्हारे समान उच्च चरित्र युवकोंको देखकर मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न होता है। वास्तवमें तुम जितेन्द्र हो। जो मनोनिग्रह बड़े बड़े योगिजनोंमें भी नहीं पाया जाता है वही तुम्हारे समान पूर्ण यौवन राजपुत्रोंमें देखकर बड़ा आश्चर्य्य होता है।

युवक—महात्मन्! यह बात तो अब कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि, मैं भिक्षुक नहीं हूं, पर महात्मन्! मैंने यह भिक्षुवृत्ति बौद्धधर्मकी अवहेलना करनेके निमित्त ग्रहण नहीं की है। प्रत्युत यह किसी राजकीय कार्य्यको सिद्ध करनेके निमित्त की है।

साधु—जितेन्द्र! मैं सब जानता हूं! मुझे तेरी इस वृत्तिपर बिलकुल खेद नहीं है। उस हालतमें—जब कि, कई पवित्र वेष को पहननेवाले, धर्म्मगुरुका दण्ड हाथमें लेनेवाले, और अपनेको बुद्धके सच्चे अनुयायी कहनेवाले कितने ही बौद्ध भिक्षु दुराचारों और व्यसनोंमें पड़े अपना जीवन व्यतीत कर रहे है—तेरे समान जितेन्द्रिय नवयुवक इस वेषको धारण करले तो उससे धर्मका गौरव घटनेके बदले बढ़ेगा ही। अच्छा अब तुम यहासे पाटलि-पुत्र जाओ तब यह पत्र अशोकको दे देना।

जितेन्द्र—आचार्य्य! क्या मैं नम्रता पूर्वक आपका नाम पूछ सकता हूं?

सा—इस शरीरको "मोग्गली पुत्र तिष्य" कहते हैं।

जि—भगवन्! आपके दर्शन कर मैं कृतार्थ हुआ। स्वामी चिदानन्दजी आपकी बडी प्रशसा किया करते थे। सचमुच आप बौद्ध भिक्षुओंके दीपक हैं। कृपया क्या आप बतलाएगे कि, बौद्ध धर्मका भविष्य क्या होगा?

मोग—जितेन्द्र! इस समय बौद्धलोगोंका मनुष्यत्व नष्ट हो गया है। जिस धर्मके सूत्रधार सम्पुष्टाचार्य्यके समान मनुष्यत्व विहीन, निर्विवेकी, और अनाचारी भिक्षुक हैं। जिस अहिंसात्मक धर्मका प्रचार तलवारके जोरपर किया जा रहा है। उसका पतन अनिवार्य्य है। बौद्धोंमें जातीयता तो अवश्य है, मगर उनका मनुष्यत्व खो गया है। और केवल जातीयतासे कार्य्य नहीं चल सकता! मनुष्यत्वकी विरोधिनी जातीयता

नाशक है। उसका नष्ट होना ही अच्छा है। अच्छा हो यदि मनुष्यत्व विहीन जाति एकवार नष्ट हो जाय। और फिरसे मनुष्यत्व प्राप्त करे।

जितेन्द्र—महात्मन्! आपका ज्ञान दिव्य है। वहातक पहुंचनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं। अच्छा तो अब मैं विदा होता हूं।

मोग्गली—जितेन्द्र! तुमसे एक वार मिलनेका कार्य्य और पड़ेगा। यदि आवश्यकता होतो मुझसे इस पास हीके पहाड़पर इसी समय मिलना। अन्यत्र कहीं पता न लगेगा।

जितेन्द्र—महात्मन्! आपकी जय हो।

मोग्गली—धर्म वृद्धि!

(प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

मोर ! तू इसी प्रकार संसारके अन्ततक नाचाकर ! और ससारसे त्रस्त मानवोंको प्रेमका पाठ पढ़ाया कर !

तीसरा अंक
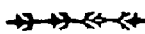
प्रथम—दृश्य

स्थान—राज महलकी छत।

(एक आसन पर सम्राट् अशोक बैठे हैं। सामने एक मोर मोरनीका जोड़ा तरह तरहकी क्रीड़ाएं कर रहा है)

अशोक—मेरा जीवन भी एक मरुभूमिके समान है। उस मरुभूमिमें न तो कभी शान्तिके चन्द्रमाकी शीतल किरणें छिटकती हैं, न कभी प्रेमका मधुर झरना कलकलनाद करता हुआ बहता है। उस मरुभूमिमें न तो कभी विश्वासका सुगन्धित फूल खिलता है न कभी सहानुभूतिके सुन्दर पक्षी चहकते हैं। उस मरुभूमिमें हमेशा रक्तपातका देवता अपनी भयङ्कर जिह्वाको लपलपाता हुआ विचरण किया करता है—उस मरुभूमिमें रण-चण्डिकाकी विकराल मूर्त्ति हमेशा अट्टहास किया करती है। कितना रूखा जीवन है! (मोर और मोरनीकी ओर देखकर) अहा! यह मोर और मोरनीका जोड़ा कितने प्रेमसे क्रीड़ा कर रहा है! मोर! सचमुच तुम बड़भागी हो। तुम्हें इस समय जो सुख प्राप्त है वह सुख बड़े २ चक्रवर्त्ती राजाओंको भी अप्राप्य है। मोर! तू इसी प्रकार संसारके अन्ततक नाचा कर! और

इसी नृत्यके द्वारा हम मानवोंको—संसारसे त्रस्त मानवोंको प्रेमकी शिक्षा दिया कर !

(मोहनका प्रवेश और अभिवादन करना)

मोहन—भगवन् ! कलिङ्ग देशका युवराज गिरफ्तार होकर आ गया है !

अशोक—अच्छा उसे सम्मानपूर्वक यहां ले आओ !

मोहन—जो आज्ञा ! (जाता है)

अशोक—जब इन पशु पक्षियोंमें भी इस तरहका प्रेम आकर्षण पाया जाता है, तब संसारकी सिरमौर मनुष्य जातिका प्रेम कितना उच्च होगा, यह कैसे कहा जा सकता है। लेकिन यदि ऐसा है तो फिर संसार दुःखमय क्यों कहा जाता है ? (सोचता है)........ जरूर, यह संसार तो दुःखमय है ही, जहांपर हमेशा जीवन कलहका व्यापार जारी रहता है, जहापर ईर्षा, द्वेष, हिंसा, बन्धुविरोधका घृणित कीचड़ भरा हुआ है, वह संसार दुःखमय नहीं तो क्या है ? फिर भी इस पापताप पूर्ण संसारमें, इस नैराश्यके घोर अन्धकारमें प्रेम पूर्णचन्द्रमाकी तरह चमका करता है। संसारके इस घोर दुःखमय कलेवर पर यह प्रेम सान्त्वनाकी तरह आकर नृत्य किया करता है। जब मनुष्य संसारके दुःखमय व्यापारसे घबरा जाता है, तब यही प्रेम मातृ प्रेमका रूपधारण कर उसे अपनी गोदमें ले लेता है जब मनुष्य दिनभरके परिश्रमसे थक जाता है तब यही प्रेम रमणीप्रेमका रूप धारण कर उसे सान्त्वनाका अमृत पिलाता है।...........

(जितेन्द्रके वेषमें प्रणयिनीका प्रवेश)

जितेन्द्र—(स्वगत) यही सम्राट् अशोक हैं ! जिनके अत्याचारकी काली कहानी समग्र संसारमें व्याप्त हो रही है, वेही ये सम्राट् अशोक हैं। कैसा सौम्य मुख है ! आंखोंसे पवित्रता टपक रही है। क्या यही मूर्त्ति अत्याचारिणी है ? यदि ऐसा है तो कहना चाहिए अवश्य यह हलाहलसे भरा हुआ स्वर्ण कलश है।

अशोक—(जितेन्द्रकी ओर न देखकर) हाय ! उसी रमणी प्रेमसे मैं-भारतवर्षका सम्राट् अभीतक वंचित हूं। जो रमणी रत्न अपने उज्वल प्रकाशसे एक गरीबके झोपड़ेको भी प्रकाशित करता रहता है, उसी प्रकाशसे अभीतक मेरा महल शून्य है। हाय ! क्या मुझे कभी कोई सुयोग्य प्रणयिनी प्राप्त न होगी ! कैसी प्रणयिनी मुझे चाहिए ? (सोचकर) हां, ठीक ऐसी, बिलकुल ऐसी। मेरी कल्पनाने ठीक मूर्त्ति तैयार करली ..बिलकुल ठीक ऐसा कान, ऐसा मुख. .ऐसी नाक, बिलकुल ठीक। ..

जितेन्द्र—चक्रवर्ती सम्राट्की जय हो !

अशोक—(चौंककर) कौन कलिंगदेशके युवराज ! युवराज, अशोक तुम्हारा स्वागत करता है। (सिंहसनसे उठता हैं और हाथ पकड़कर अपने सिंहासन पर ले जाता है।)

जितेन्द्र—(हाथ पकड़नेसे चौंक उठता है और पीछे हटकर स्वगत कहता हैं) यह क्या ? सम्राट अशोकका इतना मृदु व्यवहार !

अशोक—युवराज! इस तरह घबराकर क्योंपीछे हटते हो? क्या मेरे सैनिकोंने मार्गमें तुमसे कोई दुर्व्यवहार किया?

जितुन्द्र—नहीं भगवन्! जिस तरहसे सैनिकोंको एक युवराजके साथ पेश आना चाहिए उसी आदरके साथ आपके सैनिक मेरे साथ पेश आये हैं।

अशोक—जितेन्द्र! जिस समय तुम यहां आये उस समय मैं अपने कल्पना राज्यमें एक सुन्दर प्रणयिनीको तैयार कर रहा था। इस कारण मुझे तुम्हारा आना विदित न हुआ। युव-राज! मुझे आश्चर्य्य है कि, जिस प्रणयिनीकी मधुर प्रतिमा मैंने अपनी कल्पनामें निश्चित की है, उसका सब ढग तुम्हारे रूपसे मिलता हुआ हैं, केवल वेशभूषा मात्रका अन्तर है।

जितेन्द्र---(स्वगत) ओफ़! सर्वनाश! क्या इन्होंने मुझे पहचान लिया। (प्रगट) भगवन्! कौन प्रणयिनी?

अशोक--अभी २ मैंने अपनी कल्पनासे उस प्रतिमाकी सृष्टि की थी। युवराज! तुम अभीतक खड़े हो, खड़े २ तुम्हारे पैर थक गये होंगे, तुम इस आसनपर बैठकर विश्राम करो! युवराज! तुम्हें अशोकके इस व्यवहारपर आश्चर्य्य होता होगा पर अब आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है। कलिंगदेशके युद्धके पश्चात्-से ही मैंने अपने हृदयसे शत्रुभावको निकाल दिया है। इसलिए अब तुम निसंकोच होकर मेरे स्वागतको ग्रहण करो।

जितेन्द्र—भगवन्। मैं इतना योग्य नहीं कि आपके बराबर बैठनेका साहस कर सकूं। मैं यहींपर बैठता हूं।

अशोक–नहीं यह नहीं हो सकता। कलिंग देशके राज्य सिंहासनको मैं अपनेसे कम नहीं समझता (हाथ पकड़कर बैठा लेता है) जितेन्द्र-(स्वगत) कितना आश्चर्य है ? जिस सम्राट्-का हृदय शिशुसे भी अधिक सरल, दूधसे भी अधिक स्वच्छ, और मातृ हृदयसे भी अधिक पवित्र है। उसी सम्राट्के विषय में संसारके अन्दर कितने बुरे विचार फैले हुए हैं।

अशोक--युवराज ! मेरी इच्छा है कि आजन्म तुमसे मेरा मित्रताका सम्बन्ध बना रहे ! यदि मेरी इच्छा तुमने पूर्णकी तो मैं अपनेको भाग्यशाली समझूंगा।

जितेन्द्र--भगवन् ! यदि प्रबल प्रतापशील मौर्य्य कुलसे मित्रता हो गई, तो कलिंग देशका राजसिंहासन अपना अहो-भाग्य समझेगा।

अशोक--वह तो है ही। कलिंग देशसे मित्रता करनेका तो मैं कभीसे निश्चय कर चुका। पर इस समय तो मैं तुमसे व्यक्ति विषयक मित्रताकी बात कर रहा हूं। मैं चाहता हूं कि आजन्म तुम्हारे सुखकर संगमें अपने दिन बिताऊं।

प्रणयिनी—(स्वगत) यह तो बड़ा ही कठिन प्रश्न है (प्रगट) भगवन् ! इस बातको स्वीकार करनेके पूर्व मुझे कुछ समय यह सोचनेके लिए दीजिए कि, मैं इस योग्य हूं या नहीं।

अशोक—बहुत प्रसन्नताके साथ विचार करलो। तबतक हम भी कलिंग देशका फ़ैसला किये देते हैं। तबतक तुम इसी महलमें रहकर अपनी सुमधुर संगतिसे मुझे सन्तुष्ट किया करो।

बस यही दण्ड मैंने अपनी कैदीके लिये तजवीज़ किया है।

प्रणयिनी--(स्वगत) ओफ यह तो बहुत कठिन दण्ड है। मैं इस प्रकार वेष बदले हुए कबतक चक्रवर्तीके साथ रह सकूंगी।

(राजमाता बुद्धिमतिका प्रवेश)

राजमाता--क्या कलिंग देशका जितेन्द्र यही है?

अशोक---हां! यही युवराज जितेन्द्र है। युवराज! ये हमारी पूजनीया माताजी हैं।

जितेन्द्र—माताजी! वह कलिंग देशका युवराज आपको अत्यन्त आदर पूर्वक नमन करता है।

राजमाता—जितेन्द्र! तू हमारा कैदी है। तुझे हमें नमन करनेका कोई अधिकार नहीं है। न तुझे अपनेको कलिंग देश का युवराज ही बतलाना चाहिए। कलिंग देशसे अब तेरा कोई सम्बन्ध नहीं, इस समय वहांके राजा विशाखानन्द हैं।

अशोक—लेकिन वे तो केवल एक शर्तपर राजा बनाए गए हैं।

राजमाता—तो क्या जितेन्द्र बौद्ध धर्म ग्रहण करनेको प्रस्तुत है?

अशोक—यह प्रश्न तो तब उठाया जा सकता है जब मृगेन्द्र की मृत्युका समाचार निश्चित हो चुका हो। लेकिन जबतक यह निश्चित न हो जाय, तबतकके लिए मैंने युवराजको अपने महलमें ठहराना निश्चित किया है।

बुद्धिमती—क्या कैदी जितेन्द्र अशोकके राज महलका मेह-मान होकर रहेगा। समता भावके पक्षपाती अशोकके न्याय विचारका क्या ही उत्कृष्ट नमूना है।

जितेन्द्र—भगवन! राजमाताका कथन सत्य है। इससे जनताको भगवान्‌के न्याय विचारके सम्बन्धमें सन्देह हो सकता है। कृपाकर आप मुझे जेलमें ही ठहरानेका प्रबन्ध करें। मुझे उसके लिए तनिक भी खेद न होगा।

अशोक–(बहुत दुःखित भावसे) राजकुमार! मुझे अत्यत दुःख है कि मैं तुम्हारा उचित सत्कार न कर सका। खैर कोई बात नहीं मैं तुम्हें उसी स्थानपर रखता हूं, जहांपर चिदानन्द स्वामी रखखे गये हैं।

जितेन्द्र—सम्राट्‌का असीम अनुग्रह है।

(राजमाता क्रोधसे दांत पीसती हुई जाती है)

अशोक–मोहन! (मोहनका प्रवेश)

अशोक–शीघ्र रथको तैयार करो। हम दरबारी जेल ज़ाना चाहते हैं। मोहन जो आज्ञा (प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

स्थान—राजमाताका सलाह भवन

(सम्पुष्टाचार्य्य)

सम्पुष्टा—मैं सिरके बालसे लेकर पैरोंके नाखूनतक बद-

माशा हूं। झूठ, विश्वासघात, कृतघ्नता, आदि सद्गुण मेरे रोम रोममें कूट कुटकर भरे हुए हैं। मैं क्या २ नहीं कर सकता ? इतने बड़े कलिंग देशका पतन ! यह भी इसी मस्तिष्कका काम है। अहा हा !! वेष भी कितना अच्छा धारणकर रक्खा है। "नमो बुद्धाय !" हा, हा, हा ! इसी एक नामकी आड़में मनुष्य हजारों अघोर कृत्य कर सकता है। बस अब एक कार्य्य और घटता है। सबसे पहले इसी अशोकको मिट्टीमें मिलाना होगा। बस उसके बाद तो मगधका सिंहासन और ...हैं। हा, हा, हा !

(राजमाताका प्रवेश)

राज—कहिये, आचार्य्य ! क्या सोच रहे हैं ?

सम्पुष्टा—कुछ नहीं, आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था।

राज—कहिए, आपके ध्यानमें कोई युक्ति आई ?

सम्पुष्टा—मेरा तो मस्तिष्क ही इस विषयमें कुछ काम नहीं करता। प्रमिला अभीतक नहीं आई। ऐसी बातोंमें उसका मस्तिष्क बहुत काम करता है। वह प्रतिहिंसासे भी अधिक अन्धी, लोभसे भी बढ़कर अतृप्त और क्रोधसे भी बढ़कर रक्तवर्ण है। उसकी सहायतासे हम यह कार्य्य सहजमेंही कर सकते हैं। ..यह लो वह आ रही है।

(प्रमिलाका प्रवेश)

प्रमिला—राजमाते ! यह कलिंग देशकी रानी प्रमिला आपको अत्यन्त आदर पूर्वक नमन करती है।

राज—प्रमिला! आ, हमलोग तेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे!

प्रमिला—मेरा अहो भाग्य!

राज—प्रमिला! क्या तेरे मस्तिष्कमें भी कोई बात ऐसी नहीं आती, जिससे यह नालायक लड़का संसारसे उठा दिया जाय। हमें तो तेरे मस्तिष्कपर बड़ा विश्वास है।

सम्पुष्टा—प्रमिला! आवश्यकता होनेपर हमारे साठहजार भिक्षुक हमेशा तेरी सहायताको प्रस्तुत रहेंगे।

प्रमिला—क्षमा कीजिये, आचार्य्य! यहां कल्पनाके किले नहीं बांधना है—यह गुड्डे गुड्डीका खेल नहीं है। यह एक साम्राज्यको उलट पुलट करनेकी बात है। यह षडयन्त्र किसी ऐसे वैसेके साथ नहीं देवताओंके प्रियदर्शी सम्राट अशोकके साथ है। आपके पेटू भिक्षुक इस कार्य्यमें क्या सहायता कर सकते हैं? हां यदि कहीं खीर पूरीका भोजन हो तो अवश्य वे आपकी सहायता कर सकते हैं।

बुद्धिमती—प्रमिला! तो फिर क्या उपाय किया जाय?

प्रमिला—मैं नहीं समझती कि अशोकके समान पुण्यशील चक्रवर्तीका वध करनेसे क्या लाभ होगा? इस समय सारे भारतवर्षमें उनका जय जयकार हो रहा है। जनता उन्हें परमेश्वरसे भी बढ़कर समझती है। ऐसी अवस्थामें तुम क्यों उनका वध करनेको उत्तेजित हो रही हो?

बुद्धिमती—अनसमझ लड़की! तू नहीं जानती कि सौतियाडाह कितना भयंकर होता है! पापसे भी अधिक भयानक,

दुर्भिक्षसे भी अधिक निष्ठुर और पैशाचिकतासे भी अधिक विकराल यह डाह होता है। इस डाहके वशीभूत होकर मनुष्य पिशाच हो जाता है। हाय! एक राह फिरनेवाली लौंडीका लड़का इतने बड़े साम्राज्यका मालिक हो और मेरा इकलौता पुत्र उसकी गुलामी किया करे। ना, यह मुझसे सहन नहीं हो सकता।

प्रमिला—मगर कुमार वीताशोकके हृदयमें तो यह बात कभी आती ही नहीं। उनके पवित्र हृदयमें बन्धुप्रेमका निर्मल झरना शतधा और सहस्रधा होकर बहता है।...

बुद्धिमती—अरे, वह तो अभी बच्चा है। वह राजनीतिके महत्तम सिद्धान्तोंको क्या समझे? कैसा बन्धुप्रेम! और कैसी ममता! यह सब ढोंग है। इन सब प्रेमोंका उद्गम स्थान स्वार्थ है। यही स्वार्थ अपना मायावी रूप दिखाकर पति और पत्नीको माता और पुत्रको, भाई और भाईको ठगता फिरता है। इसकी धूर्ततांको बहुत कम लोग समझ पाते हैं। वीताशोक इसको नहीं समझ सका और न अशोकका विनाश हुए बिना वह इसे समझ ही सकता है। प्रमिला! चाहे तू मेरी सहायता कर चाहे न कर, जबतक इस शरीरमें प्राण हैं, मैं अशोकके नाश करनेके संकल्पको नहीं छोड़ सकती। अशोका वध करना ही मेरे जीवनका मुख्य उद्देश्य है। बगुलेका ध्यान जिस प्रकार मछलीकी ओर रहता है, बिल्लीका ध्यान जिस प्रकार चूहेकी ओर रहता है, उसी प्रकार मेरा ध्यान भी अशोककी ओर लगा हुआ है।

प्रमिला—देवी! इस प्रकार निराश मत हूजिये। मैं तो केवल आपके हृदयका थाह ले रही थी। अब मुझे निश्चय हो गया है। अब मैं आपकी सहायता करनेको जीजानसे तैयार हू। प्रमिलाका भूखा हृदय आपसे भी अधिक अशोकका बलिदान लेनेके लिए छटपटा रहा है।

(वीताशोकका प्रवेश)

वीता—माताजी! यहासे पास हीके जंगलमें एक भयानक सिंह आया हुआ है। हमारे वनरक्षकोंने तीन दिन पूर्व उसे देखा था। राजधानीके समीपवर्ती जंगलमें ऐसे हिंसक पशुका होना धोखेसे खाली नहीं। अतएव उसका शिकार करनेके लिए मैंने कल जाना निश्चित किया है। चक्रवर्ती भी साथमें आयेंगे। उसी पर्वत पर ऐसी पवित्र गुफाए' भी हैं, जहांपर बैठकर भगवान् बुद्धने तपश्चर्य्या की थी। यदि आप भी वहां चलना चाहें तो प्रबन्ध कर लिया जाय।

प्रमिला—वनरक्षकोंने सिंहको पहली बार कब देखा और अन्तिम बार कब देखा?

वीताशोक—आजसे तीन दिन पूर्व दोपहरको उन्होंने उसे पहली बार देखा था और उसी दिन संध्याको अन्तिम बार। बस उसके पश्चात उसका पता नहीं चला।

प्रमिला—(भयानक अट्टहास करके) तब तो कल चक्रवर्ती का शिकार होगा। कुमार! हम अवश्य तीर्थ-दर्शनको चलेंगे।

वीताशोक—अच्छी बात है (प्रस्थान)

प्रमिला—हाः हाः हाः कल चक्रवर्तीका शिकार होगा।

राज—प्रमिला! तुम पागल तो नहीं हो गई हो?

प्रमिला—(उन्मत्तकी तरह इधर उधर घूमती हुई) हां, हां, पागल, हां हो गई हूं। कल चक्रवर्तीका शिकार होगा। हा हा.

सम्पुष्टा—प्रमिला! तुम क्या बक रही हो?

प्रमिला—तुम क्या समझो। तुम वज्र मूर्ख हो। निरक्षर भट्टाचार्य्य हो। तुम क्या समझो कल चक्रवर्तीका शिकार होगा। अच्छा लो, अब भी नहीं समझे तो सुनो। तीन दिन पूर्व जब मैं पाटलिपुत्रसे आ रही थी, रास्तेमें विश्राम लेनेकी इच्छासे मैं और मेरे साथके लोग एक गुफ़ाके मुहानेपर पहुंचे। वहां जाकर मैंने उसके अन्दर देखा, देखते ही मैं भयसे चीख मार उठी। देखती हूं कि उस गुफामें एक भयङ्कर सिंह जबड़ा फैलाये हमारी ओर देख रहा हैं। सौभाग्यसे पास ही एक भारी शिला पड़ी हुई थी। मेरे आदमियोंने शीघ्रता पूर्वक उसे गुफाके मुंहपर डाल दिया। सिंह उसमें बन्द हो गया और अभीतक उसीमें बन्द है। कल अशोक शिकार करने जायगा। दिन भर तो उसे वह सिंह मिल ही नहीं सकता। संध्याको सब आदमियोंको वहांसे हटाकर तुम तीर्थदर्शनका बहाना करके अशोकसे गुफ़ाका द्वार खोलनेको कहना। बस गुफाका द्वार खुलते ही वह तीन दिनका भूखा वनराज इस मानव जातिके वनराजको भक्षण कर तृप्त हो जायगा। हाः हाः हाः कैसा सरल उपाय है!

बुद्धिमती—(प्रसन्न होकर) प्रमिला! तुम्हारी बुद्धि सचमुच विचक्षण है।

प्रमिला—पर मुझे केवल उसके शरीररक्षककी ओरसे धोखा है। मोहन अपनी जान रहते कभी उसका साथ न छोड़ेगा।

बुद्धिमती—इसकी तुम चिन्ता मत करो। मोहनको वश करनेका उपाय मेरे पास मौजूद है। वह है वनमाला भिल्लनी। वह उसपर पूरी तौरसे मुग्ध है। ज्यों ही उसके पीछे उसे लगाया, वह अपनी स्वामि-भक्तिको उसके प्रेमकुण्डमें विसर्जन कर देगा।

प्रमिला—हाः हाः हाः यह तो बहुत ही उत्तम उपाय है। अशोक! यमदूत तुम्हारी राह देख रहे हैं। सावधान!

(पटाक्षेप)

तीसरा-दृश्य

०००००

स्थान-दरबारी जेल

(जितेन्द्रके वेशमें प्रणयिनी)

प्रणयिनी—यह कैसा आकर्षण है? यह मोहका उद्दाम उच्छ्वास है, या प्रेमका पवित्र सकेत? यह पूर्णचन्द्रकी स्वच्छ, और निर्मल चन्द्रिका है, या बिजलीकी चंचल उद्दाम और तीक्ष्ण चमक! कुछ मालूम नहीं पड़ता। कैसा आश्चर्य है!

मेरे पिताके घातक, कलिंगदेशके चिरशत्रु, हिन्दू धर्मके पक्के विद्वेषी सम्राट अशोककी ओर मेरा चित्त आकर्षित हो रहा है। हृदयको बहुत समझाती हूं, इस कल्पनाको मनसे निकालनेकी बहुत चेष्टा करती हूं, पर यह दिन पर दिन दृढ़ होती जाती है। इच्छा होती है जैसे इन सब बातोंको भूलकर अपने व्यक्तित्वको सम्राटमें लीन कर दूं-इच्छा होती है जैसे अपना हृदय सम्राट्के पैरोंके नीचे बिछा दूं (सोचकर) ना .. . अब इस कल्पनाको मनमें नहीं आने दूंगी। पितृघातकको मेरे हृदयमें कोई स्थान नहीं है। ना ..बस. .

(सम्राट् अशोकका प्रवेश)

अशोक-युवराज! मृगयाका सब प्रबन्ध हो चुका है। तुम तैयार हो गये? अब बिलकुल समय नहीं है।

जितेन्द्र—भगवन्! मैं बिलकुल तैयार हूं।

अशोक—अच्छा, तो चलो।

जितेन्द्र—चलिये! (दोनों जाते हैं)

(दृश्य-परिवर्त्तन)

(स्थान-जङ्गल, एक वृक्षके नीचे मोहन और वनमाला बैठे हैं)

मोहन—क्योंरी भीलकी लड़की! तूने क्यों बुलाया है?

वनमाला--क्योंरे भीलके लड़के! तू मेरे पास क्यों आया है?

मोहन—अरी अल्हड़ लड़की! मुझसे जबान लड़ाती है। जानती नही मैं सम्राट्का शरीर संरक्षक हूं।

वनमाला—अरे घमण्डी चण्डूल! तू मुझे नहीं जानता कि

मैं राजमाता बुद्धिमतीकी प्रधान दासी हूं। चाहूं तो अभी तेरा तीन तेरह करवादूं।

मोहन—बस, बस, बहुत हो चुका। बतला तूने मुझे क्यों बुलाया है?

बनमाला—इसीलिये, कि मैं तुमसे विवाह करूंगी।

मोहन—ना बाबा! यह मुझसे नहीं हो सकता मुझसे विवाह नहीं होगा। मैं यह बात अपनी दसों इन्द्रियोंसे अस्वीकार करता हूं।

बनमाला—तुझे क्या तेरे सात पुरखाओंको स्वीकार करना पड़ेगा।

मोहन—बापरे बाप! यह अच्छी जबरदस्ती है। विवाहमें भी जबर्दस्ती! यह तो एक नई बात है-बिलकुल नई बात है। यह क्या, ऐसा उग्ररूप क्यों धारण कर लिया? बाबारे! (भागता है)

बनमाला—भागके कहां जायगा (दौडकर पकड लेती है) बोल, विवाह करेगा या नहीं? बोल (एक दो घूसे लगाती है)

मोहन—करूगा, करूगा, सात बार करूंगा। मैं करूंगा, मेरे सात पुरखा करेंगे।

बनमाला—क्या करेगा?

मोहन—श्राद्ध।

बनमाला—श्राद्ध नहीं विवाह।

मोहन—हां, हां, विवाह, विवाह, विवाह।

बनमाला—यही तो मेरे मोहनके योग्य बात है।

मोहन—यही तो मेरी वनमालाका प्रणयकलह है।

वनमाला—एक गाना गाऊं सुनेगा?

मोहन—हां, हां, क्यों नहीं।

(वनमाला गाती है)

मोहन—वाह, वाह, वाह, क्या कहना बिलकुल ढोलमें कङ्कड़ भर दिये। धत तेरेकी, यह कौवा भी कांव, काव, करके उड़ गया, उल्लुओंने भी आखें बन्द कर ली। धन्य......... ...

वनमाला—बस अपनी वाणीको बन्द करो।

मोहन—वनमाला! चलो अब चलें। सम्राट हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। ईश्वर करे वह दिन शीघ्र आय जब हम हमेशा एकत्र रहकर प्रणय कोप दिखायें। वनमाला—तथास्तु। (जाते हैं)

(दृश्य परिवर्तन)

(सम्राट् अशोक, राजमाता, सम्पुष्टाचार्य्य और प्रमिला)

सम्राट्—आजका आना विलकुल व्यर्थ हुआ। सिंहका कहीं पता न चला।

बुद्धिमती—ख़ैर कोई बात नहीं। सिंहका पता न चला तो न सही। हमें तीर्थदर्शन तो हो जायगा। अहा! कैसा पवित्र स्थान है? यहीं पर बैठकर भगवान् बुद्धने तपस्या की थी, अशोक! यह गुफा बहुत ही पवित्र मालूम होती है। इसका द्वार न मालूम क्यों शिलासे अवरुद्ध है? सम्भवतः भीतर तलघर होगा अशोक! यदि तुम इसे खोल सको तो हमे भी देखनेका सौभाग्य प्राप्त हो जाय।

अशोक—अच्छी बात है। (द्वार खोलनेकी चेष्टा)

बुद्धिमती—शायद यह द्वार बहुत सुदृढ है। अशोक! हम तुम्हारी सहायताको दूसरे लोग बुलाते हैं। (सब जाते हैं।)

(अशोकके बहुत कोशिश करनेपर एकाएक द्वार खुल जाता है और उसमेसे एक भीमकाय सिंह निकलकर अशोकपर झपटता है और उसे गिराकर ऊपर एक पञ्जा रक्खे हुए क्रोध भरी दृष्टिसे देखता है। इतनेमें जितेन्द्र आता है, इस भयानक दृश्यको देखतेही वह एकदम जोरसे चीख मारता है)

अशोक—(नीचेसे पडे२) युवराज बस, ठहरो। अब आगे मत बढ़ो। वहींसे वापस फिर जाओ। तुम्हारा मुझपर अत्यन्त प्रेम है, यह मैं जानता हूं। पर उसके लिये अपने प्राणोंको विपत्तिमें न डालो, यह भीमकाय प्राणी अभी हम दोनोंकी चटनी करडालेगा। मेरी मृत्यु तो निश्चित है, पर यदि मेरे सम्मुख तुम्हारे प्राणोंकी भी हानि होगई तो मुझे मरते समय भी शान्ति न मिलेगी। युवराज! लौट जाओ अशोकके इस अन्तिम अनुरोधको स्वीकार करो।

जितेन्द्र—भगवन्! आप यह क्या कह रहे हैं? कलिङ्ग देशका युवराज स्वार्थमयी मैत्री करना नहीं जानता। वह मैत्रीके महत्वको समझता है। उसकी मैत्री इन्द्र धनुषका मोहक रङ्ग नहीं है। बिजलीकी शानदार चमक नहीं है। बल्कि स्वच्छ एवं शान्त सरोवरकी तरह स्थिर, निर्मल और सौम्य हैं। भगवन्! यह जितेन्द्र दूसरोंके लिए प्राण देनेमें जो आनन्द है उसे

अच्छी तरह समझता है। यह जितेन्द्र मौतको नहीं डरता, बल्कि उसे गले लगाता है। सम्राट्! आपने एक समय मुझसे मैत्रीकी याचना की थी, उसी समय मैं अपना हृदय आपको अर्पण करचुका। अब यदि आपकी रक्षाके निमित्त मुझे कठिन-से कठिन यंत्रणा भी सहना पड़े तो मैं हँसता हुआ सहूंगा। यह सिंह तो क्या वस्तु है।

अशोक—युवराज! यह तो तुम्हारा महत्व है पर

जितेन्द्र-महत्व नहीं हैं। यह तो एक साधारण कर्त्तव्य है बहुत ही साधारण कर्त्तव्य है। मनुष्यत्वका एक बहुत ही छोटा सा नियम है। इस प्रकार अपाहिज की तरह खड़े २ आपकी मृत्यु देखना महत्वका अभाव प्रगट नहीं करता, बल्कि मनुष्यत्वका अभाव प्रगट करता है। भगवन्! बस अब मुझे न रोकिए। कर्त्तव्य मुझे पुकार रहा है। अब दूसरी बात सुननेके लिए मेरे कानोंमें स्थान नहीं।

(धीरे २ आगे बढ़कर अशोकके शरीर पर लेटकर उसके शरीरको ढक देता है)

जितेन्द्र—भगवन्! कलिंग देशके राजवंशपर कृपा रखना। हिन्दूधर्मको नष्ट होनेसे बचाना। बस यही मात्र मेरी एक साधना है। बनराज! यदि तू क्षमाके महत्वको समझताहै मनुष्यके मूल्यको समझता है, तब तो हम दोनोंको जीवन दान देदे। अन्यथा अपनी क्षुधाको तृप्त करनेके लिए मुझे अपना ग्रास बना।

अशोक—(निराश भावसे) युवराज ! यह बिलकुल असम्भव है। मेरी तो मृत्यु निश्चित थी ही, पर तुमने व्यर्थ अपने प्राणोंसे हाथ धोये।

जितेन्द्र—भगवन्! संसारमें असम्भव कुछ भी नहीं है। संसार में एक भाव ऐसा भी है जिसके प्रभावसे हिंसक पशु अपनी हिंसक प्रवृत्तिको छोड देते हैं। जिसके दिव्यप्रभावसे अत्याचारोंके हाथको भयङ्कर तलवार छिटक पडती है। उसी भाव के प्रभावसे काला और कडकडाता हुआ बादल भी जलकी शीतल वृष्टि करता है। उस भावको "मैत्रीभाव" कहते हैं। इसी मैत्रीभावके कारण कृतघ्नता की कठोर छातीपर क्षमा नृत्य किया करती है। इसी मैत्री भावके कारण दुःखकी शुष्क मरूभूमि पर करुणाका स्रोत बहता रहता है। भगवन्! यह सिंह तो क्या वस्तु है स्वयं यमराज भी उस भावके सम्मुख शीश झुकाते हैं।

अशोक—जितेन्द्र! यह केवल कल्पनाके महल हैं।

जितेन्द्र—कल्पना नहीं है। यह कठोर सत्य है। देखिए, यह सिंह जो कुछ समय पूर्व क्रोधकी उग्रमूर्तिबन रहा था, धीरे २ शान्त होता जा रहा है। केवल शान्त ही नहीं, बल्कि उसे अपने किये पर पश्चाताप भी हो रहा है। उसकी आंखोंसे टप २ करके आंसू टपक रहे हैं वह देखिए, उसने अपना पंजा भी उठा लिया। भगवन्! उठिए। परमात्माको धन्यवाद दीजिये जिसने आज इस सकटसे हमें मुक्त किया।

(अशोक और जितेन्द्र उठ जाते हैं। जितेन्द्र सिंह की पीठपर हाथ फेरता है)

अशोक---जितेन्द्र ! जितेन्द्र !! तुम मनुष्य नहीं देवता हो। देवताओंसे भी तुम्हारा आसन बहुत ऊपर है, तुमने आज वह कार्य्य कर दिखाया जो सृष्टिके भूषण दिव्य महात्माओंसे भी नहीं हो सकता। मित्र ! पहले मैं समझता था कि तुम्हारा आसन मेरे बराबर है लेकिन नहीं वह मेरी भूल थी। तुम्हारा आसन मुझसे ऊपर-बहुत ऊपर है। मेरे समान क्षुद्र पुरुष तुमसे मित्रता करनेका साहस नही कर सकता। भक्ति अवश्य कर सकता है। और उसके बदलेमें थोड़ी सी बिलकुल थोडीसी करुणा प्राप्त कर सकता है। अभी तक मैं समझे हुए था कि, मैंने कलिंग विजय कियाहै मगर आज मै समझा हूं कि, कलिग विजय करना सहज नहीं है। अभी तक मैं अपनेको विजयी और तुमको विजित समझता था, पर आज मैं समझा कि, मैं ही स्वयं विजित हू, और तुम विजयी हो। जितेन्द्र ! मैं तुमसे मित्रताका दम नहीं भरता, पर कृपाकी एक मुट्ठी भीख चाहता हूं, बोलो दोगे। (घुटने टेक देते हैं)

जितेन्द्र—उठिए भगवन् ! उठिए। आप यह क्या कर रहे हैं ? कलिंग देशके प्रताड़ित युवराजके पैरोंपर सारे भारतके चक्रवर्ती सम्राट् पड़े हुए हैं। उठिए, नहीं तो प्रलय हो जायगा।

अशोक—मैं सम्राट् नहीं हूं मैं चक्रवर्ती नहीं हूं। मैं एक साधारण मनुष्य हूं-मनुष्य मात्र हूं। युवराज ! चक्रवर्ती

समझकर मुझसे भेद मत रक्खो। तुम यदि कहो तो इसी समय एक मुट्ठी भीखकी तरह इस सारे साम्राज्यको छोड़ सकता हूं। तुम्हारे हृदयके प्रेमका एक कण पानेके लिए मैं सारे विश्वके साम्राज्यको लात मार सकता हूं। युवराज! यह भूल जाओ कि, मैं विजयी हू और तुम विजित, यह भूल जाओ कि मैं चक्रवर्ती सम्राट् हूं और तुम एक छोटे राज्यके युवराज! केवल इतना ही स्मरण रक्खो कि, मैं भी मनुष्य हूं और तुम भी मनुष्य, तुम दाता हो मैं भिखारी। तुम्हारे हृदयके प्रेमकी भिक्षा मैं चाहता हूं, बोलो दोगे या नहीं!

जितेन्द्र—भगवन्! इस तरह मुझे लज्जित न कीजिए। इस हृदय पर आपका पूर्ण अधिकार है। आप जो मेरी इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। उसका पात्र मैं नहीं बल्कि यह सिंह है।

अशोक—सच है युवराज! ऐ संसार! ऐ चन्द्र! ऐ सूरज! इस अपूर्व सृष्टिको देखो। क्षमाके इस दिव्य महात्म्यको समझो उस महात्म्यको समझो जो मनुष्यको देवता बना देता हैं हिं-सक पशुके कठोर हृदयपर भी दयाका श्रोत बहा देता है। (अपने बढ़िया दुपट्टेसे उसके आसू पोछते हुए) वनराज! तुमने हमें जीवन दान दिया, उसके लिये तो हम तुम्हारे आभारी हैं ही पर सबसे अधिक आभारी हम इस लिए हैं कि, तुमने हमें अपने इस कार्यके द्वारा उस कर्त्तव्यका स्मरण दिलाया जिसे हम भूल गये थे। तुमने हमें क्षमाका महत्व बतलाया। उसी मह-त्वके वश होकर मैं उन सब षड्यन्त्रकारियोंको भी क्षमा

करता हूं जिन्होंने आज मेरे प्राण लेनेका यत्न किया था। इसके अतिरिक्त आजसे ही मैं इस शिकारके हत्याकाण्डको बन्द करनेका परवाना निकालता हूं। हाय! कैसा अफसोस है। हम मनुष्योंको ससारके सिरमौर मनुष्योंको इन हिंसक पशुओंसे शिक्षा लेना पडती है। कैसा अधःपतन है!

जितेन्द्र—भगवन्! बहुत विलम्ब हो गया। सब लोग राह देख रहे होंगे। चलिए अब चलें। (दोनों जाते हैं, और पीछे २ सिंह भी जाता है।)

चौथा दृश्य

स्थान—राजवाटिका

समय—प्रातःकाल

(इन्दिरा गारही है)

कोई पूछले मुझे क्यों? यह चन्द्र मनोहर है?
बेशक यही कहूगी यह रूप उसीका है।
उ ा कमलको भी देखो उसका ही रग है उसमें
कोकिलके रागमें भी प्राणेश बोलता है।
वह मलय पवन इतना क्यों स्निग्ध औ सुगन्धित
उसके ही स्पर्शसे वह जौहर दिखा रहा है।
विस्तीर्ण व्योमवासी तारागणोंसे पूछो
हसकर यही कहेंगे उसहीकी रोशनी है। को०।

इन्दिरा—कैसा सुन्दर दृश्य है ! एक ओर सूर्य्य हीनगौरव-के साथ अस्त हो रहा है, दूसरी ओर मधुर हंसीकी अठखेलिया करता हुआ चन्द्रमा उदय हो रहा है। जान पडता है जैसे प्रताःपका अस्त होकर शान्तिका उदय होरहा हो, कर्त्तव्यका अस्त होकर प्रेमका उदय हो रहा हो, अभिमानका अस्त होकर मृदुताका उदय हो रहा हो। ऐ दिव्य शोभाधारिणी सन्ध्या ! ऐ चिर सुहास्यमयी सन्ध्या ! तू इसी प्रकार सृष्टिके अन्ततक अपना मनोहर दृश्य दिखायाकर .

(एक बौद्ध भिक्षुका प्रवेश)

बौद्ध—और इसी प्रकार इन्दिराके सरल हृदयको रिझाया कर !

इन्दिरा—(चौंककर) ऐं ! यह परिचित स्वर ! यह हृदय तन्त्रीकी दिव्य झंकार, कहासे सुनाई पड रही है ? (बौद्ध भिक्षुकी ओर देखकर) ना, यहा तो कोई नहीं है। यह तो कोई बौद्ध भिक्षु है। . केवल हृदयका भ्रम है।

बौ०भि०—हृदयका भ्रम नहीं दृष्टिका दोष है। नहीं तो क्या इस भिक्षुकको देखकर भी तुम नमन न करती ?

इन्दिरा—(मुसकराकर) अच्छा भिक्षुकजी महाराज ! आप है। सचमुच तुम्हारे इस वेषपर मेरी आंख धोखा खागई। भिक्षुजी ! तुम्हारे इस संसार विरक्त वेषको तुम्हारा यह मनोनिग्रह खूब शोभा देता है।

बौ० भि०—इन्दिरा ! क्या किया जाय, कई राजकीय एवं

धार्मिक झंझटोंको सुलझानेके लिए इस वेशको :धारण करना जरूरी हुआ। ..... इन्दिरा! खैर इस वातको छोड़ो, और उस सामने वाली कुटीकी ओर देखो, कुछ देख पाती हो?

इन्दिरा—(देखकर) ना, कुछ भी तो नहीं। वह तो राज माताकी कुटी है।

बौ०भि०—राज माताकी कुटी क्या उसे षड्यन्त्रकारियोंका एक अड्डा कहना चाहिए। वे देखो उस खिड़कीमेंसे दो मत्सर पूर्ण आंखें किस भयानकतासे चमक रही हैं?

इन्दिरा—(देखकर) ओफ! कैसी भयानक दृष्टि है? जैसे स्वयं मूर्त्तिमती ईर्षा अपने नेत्रोंसे देख रही हो। चलो हम यहां से हट चलें। मुझे इस दृष्टिसे बड़ा भय लगता है।

(इन्दिरा बौद्धभिक्षुका हाथ अपने हाथमें लेकर एक लता मण्डलकी ओटमें हो जाती है)

इन्दिरा—यह किसकी दृष्टि है?

बौ० भि०—इन्दिरा! यह दृष्टि कलिङ्ग देशकी रानी प्रमिला की है। यह स्त्री वड़े ही दुष्ट स्वभावकी है।

इन्दिरा—वह हमारी ओर इतनी कठोर दृष्टिसे क्यों देख रही है?

बौद्ध—यह तो उसका हमेशाका स्वभाव है। हम लोगोंके प्रेम पर उसे ईर्षा हो रही है। इन्दिरा! इस समय मैं किसी आवश्यकीय कार्य्यसे आया हुआ हूं। मुझे इसीसमय चक्र-वर्त्तीसे मिलना है।

इन्दिरा—यह तो असम्भव है। इस समय चक्रवर्त्ती बोधि वृक्षके तले आत्मचिन्तन कर रहे हैं। तुम तो क्या, पर मेरे सिवा कोई भी व्यक्ति उनसे नहीं मिल सकता।

बौद्ध—तो इस समय मेरा यह कार्य्य तुम्हींको सम्पादित करना होगा।

इन्दिरा—क्यों? मैं क्यों करने लगी? मैं तुम्हारी कौन होती हूं?

बौ० मि०—तुम मेरी हृदय वाटिकाका हार सिंगार, मेरी आंखका ठण्डा आंसू और मेरे दुःखकी सान्त्वना हो। इन्दिरा! इस समय हंसी छोडकर मेरी बात पर ध्यान दो। नहीं तो हमारी हंसीके प्रवाहमें दो अमूल्य प्राणोंका बलिदान हो जायगा! वह बात मैं इस समय प्रत्यक्षमें नहीं कह सकता। आओ तुम्हारे कानमें कह दूं।

(कानमें धीरे धीरे कुछ कहता है)

इन्दिरा—(कांपकर) ओफ! कैसा राक्षसी अत्याचार है! अपनेको धर्मगुरु कहलानेवाले आचार्य्यों के हाथसे यह दुष्कर्म! अब मैं कभी इन दुरात्माओंको नमन न करूंगी।

बौ० भि०—इन्दिरा! इसके अतिरिक्त एक और कार्य्य, बहुत आवश्यक है। इस पत्रको भी इसी समय चक्रवर्त्तीके पास पहुंचाना होगा। जब मैं हरिद्वारसे यहां आ रहा था, मार्गमें एक स्थान पर आचार्य्य मोग्गलीपुत्रतिष्यसे भेंट हुई थी, उन्होंने यह पत्र सम्राटके पास पहुचानेके निमित्त दिया है।

(पत्र देता है)

इन्दिरा—क्या आचार्य्य मोग्गली पुत्रतिष्यसे भेंट हुई थी? धन्य भाग्य!

बौ० भि०—उसके लिये ईर्षा करनेकी तुम्हे आवश्यकता नहीं है। उसमें आधा भाग तुम्हारा भी तो है। अच्छा तो इन्दिरा! अब मैं चलता हू, तुम शीघ्रता पूर्वक जाकर सम्राटसे सब समाचार कह दो।

इन्दिरा—जरा ठहरो तो, मुझे अभी बहुत कुछ कहना है।

बौ० भि०—मेरी दुलारी इन्दिरा! तुम्हे जो कुछ कहना हो शीघ्र कह डालो। यह समय बहुमूल्य है।

इन्दिरा—देखोजी! क्या कहती थी, भूल गई। कहना तो बहुत कुछ हैं। मगर इस समय स्मरण नहीं आता। (सोच-कर) देखो जी, वह बात . . . .क्या बात थी .

बौ० भि०—इन्दिरा! ईश्वर करे वह दिन शीघ्र आवे जब तुम मेरे साथ बैठकर इसी "बहुत कुछको" कहते कहते जाड़ोंकी लम्बी रातोंको छोटी कर दोगी। वह दिन शीघ्र आये जब तुम अपने श्वासकी मलय वायुसे गर्मीके लम्बे दिनोंको वसन्तके समान सुखदायी करदोगी। लेकिन इस समय तो मुझे जाने दो।

इन्दिरा—लेकिन... .

बौ० भि—लेकिन क्या?

इन्दिरा—वही तो लेकिन ..... .

बौ० भि—मेरी प्यारी इन्दिरा! क्या करूं तुम्हें छोड़कर

जानेकी इच्छा नहीं होती ! पर इस समय कर्त्तव्यकी जोशीली पुकारके आगे मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पडता है।

इन्दिरा—अच्छा, तो फिर कब भेंट होगी ?

बौ० भि—परमात्मा करे बहुत शीघ्र हो। अच्छा तो विदा !

(जाता है, इन्दिरा एकटक दृष्टिसे उधर देखती है, इतनेमें प्रमिलाका प्रवेश)

प्रमिला—इन्दिरा ! तुम उस तरुण भिक्षुकके साथ छिप २ कर क्या बातें कर रही थीं ?

इन्दिरा—रानी ! तुम्हें इन बातोंसे क्या सम्बध ?

प्रमिला—यही कि, इस प्रकारका गुप्त सम्बन्ध मैं पसन्द नहीं करती। मैं नहीं चाहती कि, सम्राट्की बहन इस प्रकारका कलुषित सम्बन्ध रखकर अपने वंशको कलकित करे मैं नहीं चाहती कि, एक राह चलते भिक्षुकसे इन्दिरा अपनी आखें लडावे।

इन्दिरा—बस प्रमिला ! बस ! अपनी कलुषित जबानको बन्द करो। अपने वशकी गौरव रक्षा किस प्रकार की जाती है, इस बातको इन्दिरा भली प्रकार समझती है। इसके लिए वह किसीके परामर्शकी अपेक्षा नहीं करती। इस सम्बन्धको गुप्त सम्बन्ध कहना ही तुम्हारे हृदयकी अपवित्रताका परिचय दे रहा है। यह पुनीत सम्बन्ध शीघ्र ही विवाहके मंगल नियममें बद्ध होनेवाला है प्रमिला ! तुम क्या समझो कि, यह सम्बन्ध

कितना पुनीत है? यह प्रेम शिशु हृदयसे भी अधिक निर्मल, ध्रुवसे भी अधिक स्थिर, और माताके हृदयसे भी अधिक पवित्र है। इस प्रेममें विलासका उद्दाम उच्छ्वास नहीं है, अनीतिकी अस्पष्ट झंकार नहीं है। यह प्रेम विश्वाससे भी अधिक स्वच्छ, करुणासे भी अधिक कोमल, और महत्वसे भी अधिक उज्वल है रानी! तुम्हारे समान कलुषित हृदयकी नारी इस महत्वको कैसे समझ सकती है?

प्रमिला—(चिल्लाकर) ऐ, नासमझ लड़की! अपनी जबानको वन्दकर! यदि अपना भला चाहती है तो अपने हृदयसे उस भिक्षुककी मूर्त्तिको हटा दे। व्यर्थ ही हठ करके प्रमिलाके क्रोधकी शिकार मत वन। उस क्रोधकी शिकार मत बन, जिसने अपने एक इशारेसे कलिंग देशके सिंहासनको उलट दिया है। उस क्रोधकी शिकार मत वन, जिसकी भीषण ज्वालामें पड़कर मृगेन्द्रके समान तेजस्वी राजा भी भस्म हो गया है।

इन्दिरा—वस प्रमिला! इस भयङ्कर दृष्टिसे मुझे मत देख। उस युवकके साथ मेरा अटल प्रेम है, वह किसी प्रकार नहीं टल सकता। ओफ़! यह कैसा दृष्टि है! अरे, कोई मुझे इस राक्षसीके हाथसे बचाओ! (मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है)

प्रमिला—(छुरा निकालकर) वस यही अच्छा है! यहींपर अन्त कर दूं! राहका कण्टक दूर हो जायगा। यही मेरे सुखकी वैरिन है, यही मेरे प्रेम सूर्य्यका राहु है। कैसा भोला मुख है? इसकी हत्या करना होगी? ना...पर नहीं यदि प्रमिलाने मनु-

ष्यत्व छोड़ा है तो वह पूरी पिशाची बनेगी। दया, सहानुभूति, विश्वास सब उसके रास्तेसे हट जांय। तो फिर वही हो, अच्छा तो इन्दिरा! जा, इस मर्त्यलोकमें अब तेरे लिए कोई स्थान नहीं है। जा, और साथमें लेती जा, उस भिक्षुकके अखण्ड प्रेमकी स्मृति! (छुरा तानती है)

(नेपथ्यमें—अरी इन्दिरा! कहा चली गई, मैं तो ढूढ़ते २ हैरान हो गई)

प्रमिला—आः! सब कार्य्य बिगड़ गया! खैर कोई बात नहीं। इन्दिरा! और एक बार सोचनेका अवसर देती हू! सावधान होजा! नहीं तो फिर यह उपाय तो बना ही है।

(जाती है)

(दो दासियोंका प्रवेश)

दा—(इन्दिराको देखकर) अरे, यह कौन है? यह तो इन्दिरा देवी है, इनकी यह हालत किसने की? हाय देवी इन्दिरा!.. खैर, अब इन्हें महल परले चलें। वहीं पर औषधि करना होगी,

(दोनों दासियें एक नर्म पलङ्गपर डालकर उसे ले जाती हैं)

(दृश्य परिवर्त्तन)

स्थान—इन्दिराका खास कमरा।

(सम्राट् अशोक, उनकी माता सुभद्रांगी, वीताशोक और इन्दिरा)

(इन्दिरा बेसुध पड़ी है, उसे सचेत करनेका प्रयत्न कर रहे हैं)

इन्दिरा (धीरे धीरे आखें खोलकर) कौन? ना ..वह . तो. .नहीं।

अशोक—(प्रेमपूर्वक) वह कौन ? इन्दिरा !

इन्दिरा—प्रमिला रानी।

अशोक—वह तो यहां नहीं है। तुम इतनी क्यों डर रही हो ?

इन्दिरा—ओफ् ! खैर, जाने दो। भैय्या ! अभी कितनी रात गई है। अभी आधी रात तो नहीं बीती ?

अशोक—ना, अभी उसमें दो घड़ी शेष है।

इन्दिरा—अच्छा हुआ, अब शायद उन लोगोंकी जान बच जायगी।

अशोक—किन लोगोंकी ?

इन्दिरा—भैय्या। आपको कुछ भी नहीं मालूम। सारे राज्यका शासन आप करते हैं, पर आपको यह भी नहीं मालूम कि खास पाटलिपुत्रमें इस समय षड्यन्त्रकारियोंके द्वारा क्या क्या अनाचार हो रहे हैं ? कितने निरपराधोंकी जान जाती है, कितनी सतियां विधवा होती हैं......खैर जाने दीजिए इस समय दो निरपराध प्राणोंकी रक्षा कीजिए। आधी रात जाते ही दरबारी जेलके अन्दर प्रमिला जाकर युवराज जितेन्द्रकी हत्या करेगी, और उसी समयमें सम्पुष्टाचार्य्य मन्त्री राधागुप्तके मकानपर जाकर उनका खून करेगा। अब आप शीघ्रता करें।

अशोक—(हृदयपर हाथ रखकर) ओफ् ! कैसा पैशाचिक काण्ड है ! पर इन्दिरा यह संवाद तुमने कहां सुना ?

इन्दिरा—बौद्धभिक्षुके द्वारा। उसी भिक्षुकने आचार्य्य मोग्गलीपुत्रतिष्यका यह पत्र आपके पास भेजा है।

अशोक—धन्य भाग्य! (चिट्ठीको सिरसे लगाकर) इन्दिरा! वह भिक्षुक कौन था?

इन्दिरा–(लज्जित होकर) सो मुझे नहीं मालूम।

अशोक—खैर, अब हमें सबसे पहले उन दोनों जानोंकी रक्षा करना है। समय अधिक होता तब तो सैनिक सहायता ली जा सकती थी। पर अब तो केवल कौशलसे काम लेना होगा। (वीताशोकसे) भैय्या! तुम मेरे और अपने सब शरीर संरक्षकोंको लेकर मन्त्रीजीके मकान पर जाओ। और किसी कौशलसे उनकी रक्षा करो। और मैं केवल मोहनको साथ लेकर दरबारी जेलकी ओर जाता हूं।

वीताशोक—जो आज्ञा। (सब जाते हैं)

(पटाक्षेप)

पांचवा–दृश्य

स्थान–दरबारीजेल

समय–रातके ग्यारहबजे

(नकली जितेन्द्र)

जितेन्द्र—कैसा अपूर्व दृश्य था! सारे भारतवर्षका चक्रवर्ती सम्राट् मेरे पैरोंके समीप शिर झुकाए बैठा था। घुटने टेककर, आंखोंमें आंसू भरकर वह मुझसे एक कण प्रेमकी याचना कर रहा था। प्रेमकी एक दृष्टिके बदलेमें वह अपना सारा साम्राज्य विसर्जन करनेको तैयार था। हाय, मैं उसकी उस एक इच्छा

को भी पूर्ण न कर सकी। उसकी एक क्षुद्रयाचनाको मैंने उलटेपैरों वापस कर दी। पर इसमें मेरा क्या दोष है, विना माता पिताकी आज्ञाके मैं एक विधर्मीको कैसे अपना सकती हूं? अशोक! अशोक! मुझे क्षमा करना तुम सचमुच महानुभाव हो। वीर! तुम वास्तवमें सारे भारतके हृदयसम्राट हो! इच्छा होती है जैसे मैं अपना हृदय तुम्हारे सम्मुख विछा दूं, और तुम उसे रौंदते हुए सुखपूर्वक यशके मन्दिरमें चले जाओ। इच्छा होती है जैसे ..ना...अब अच्छा नहीं लगता . नींद आती है .....कपड़े वदल कर सो जाऊं।

(स्त्री वेष धारण कर सो जाती है)

(धीरे २ सम्राट अशोक प्रवेश करते हैं और उसे देखते ही चौंक उठते हैं)

अशोक—ऐं! मैं यह क्या देख रहा हूं। यह जागृति है या स्वप्न? यह भ्रम है या इन्द्रजाल? युवराज जितेन्द्रके स्थानपर यह सुन्दरी! कैसा आश्चर्य है? यह सुन्दरी कौन है? यह स्वर्गकी गरिमा है या विश्वका विस्मय? यह जगत्का सारभूत सौन्दर्य्य है या कविका सफल स्वप्न! अहा! इसके मुखपर मुस्कराहटकी कैसी सुन्दर रेखा दौड़ रही है? मानों गंगाके जलपर सूर्य्यकी वालकिरणें नृत्य कर रही हों। जान पडता है कोई स्वप्न देख रही है। कैसा भोला मुख है! वालककी हंसीसे भी अधिक मोहक, इन्द्रधनुषसे भी अधिक रम्य, और प्रेमीके सुखमय स्वप्नसे भी अधिक मधुर यह कैसा सौन्दर्य्य

है ! (सोचकर) लेकिन यह है कौन ? क्या यही युवराज जितेन्द्र हैं ! यदि यही हैं तब तो मेरे आनन्दको कोई सीमा नहीं........ (फिर सोचकर) अवश्य यह वही छद्मी है। यदि नहीं तो फिर मेरे प्रणयिनीकी कल्पना करते ही यह हुबहू उसी रूपको लेकर वहा क्यों उपस्थित हुई ? यदि नहीं तो फिर क्यों इसने राज महलमें रहना अस्वीकार किया ? यदि नहीं तो फिर क्यों इसका स्पर्श होते ही हृदय तंत्रीके तार एक साथ झनझना उठते हैं ? यदि नहीं तो फिर क्यों इसके श्वासमें मलयानिल बहता है ? अवश्य यह वही छद्मी है। अशोक ! तुम सचमुच भाग्यशाली हो। (चौंककर) लेकिन मैं यहां किस लिए आया और क्या करने लग गया ? इस सौन्दर्य्यने मुझे अपना कर्तव्य भुला दिया। प्रमिलाके आनेका समय हो चुका। अब मुझे शीघ्र ही इसे यहांसे लिवा ले चलना चाहिए। लेकिन इसे जगाऊं किस प्रकार ? यदि इसे यह घटना मालूम हो गई तो अवश्य यह बहुत लज्जित हो जायगी। शायद मुझसे बोलना भी छोड़ दे। इसलिए इसे इस प्रकार जगाना चाहिए, जिसमें इसे यह घटना मालूम न हो। चलूं बाहर चल कर पुकारूं। (बाहर जाकर "युवराज ! युवराज" !! पुकारता है)

(जितेन्द्र एकदम चौंक उठता है और शीघ्रता पूर्वक पुरुष वेश धारण करता है)

जितेन्द्र—भगवन् ! पधारिए, क्या आज्ञा है ?

अशोक—(खिड़कीमेंसे) युवराज ! अब अन्दर आनेका समय

नहीं है। तुम शीघ्रतापूर्वक बाहर निकल आओ। आजसे तुम्हारी जेलकी अवधि पूर्ण हो गई।

(युवराज और अशोक चले जाते हैं)

(कुछ देर पश्चात् प्रमिला नङ्गी तलवार चमकाती हुई आती है)

प्रमिला—(तलवार चमकाकर) आज मेरी प्रतिहिंसा पूर्ण होगी। हाः हाः हाः ! (कमरा खाली देख कर) ऐं ! यहां तो कोई भी नहीं है, कहां गया ? (चारों तरफ ताक, विस्तर वगैरह सब देखती है) (तलवार चमकाकर) मेरी प्रतिहिंसाका शिकार कहां गया ?

(नेपथ्यमें—वह वहीं गया जहा उसे जाना चाहिए था)

(बौद्ध भिक्षुका प्रवेश)

प्रमिला—(आश्चर्यसे) तुम यहां कैसे ? इस आधीरातके समय तुम यहां किसलिए आये हो !

बौ० भि०—इसके पहले मैं भी यह बात पूछना चाहता हूं कि, कलिङ्ग देशकी रानी इस समय यहां क्यों आई हुई है !

प्रमिला—किसी गूढ़ उद्देश्यकी सिद्धिके लिए।

बौ० भि०—मैं तुम्हारे उसी उद्देश्यको विफल करनेके लिए आया था। प्रमिला ! तुम्हारा सारा षड्यन्त्र विफल हुआ। कलिङ्ग देशका युवराज भी सुरक्षित स्थानपर पहुच गया। और राधागुप्त की हत्याका विचार कार्य्यमें परिणित करनेवाले सम्पुष्टाचार्य्य भी पकड़े गये। रानी ! अभीतक तुम्हारी हिंसक वृत्तिका अन्त नहीं हुआ ? अभीतक तुम्हारा यह पिशाचहृदय तृप्त नहीं हुआ ? अभीतक तुम्हारी प्रतिहिसा पूर्ण नहीं हुई ?

प्रमिला—तरुण भिक्षुक,! यह सब षड्यन्त्र तुम्हारी प्राप्तिके निमित्त रचा जा रहा है। यदि आज ही तुम मुझे ग्रहण कर लो तो यह प्रतिहिंसाकी पिशाच मूर्ति करुणाकी कोमल प्रतिमा बन जाय। यदि आज तुम मुझे ग्रहण कर लो तो इस विमानके समान शुष्क हृदयमें भी कवित्वकी अविरल धारा बहने लग जाय। यदि आज तुम मुझे .....''

बौ० भि—प्रमिला! बस अब इस व्यर्थकी बकवादको छोड़ो। इस हृदय मन्दिरमें कभीसे दूसरी प्रतिमा स्थापित हो चुकी है।

प्रमिला—हटा दो, उसे वहांसे अलग कर दो, वह मेरे समान सुन्दरी नहीं है। मेरे समान कमनीय नहीं है, उसकी नाक मेरे समान तीखी''

बौ० भि०—नाक और कानपर कोई प्रेमिक मुग्ध नहीं हुआ करता। सच्चा प्रेमिक सौन्दर्य को नहीं देखता, हृदयको देखता है। प्रमिला! तुम्हारे पास वह हृदय नहीं है।

प्रमिला—यदि नहीं है तो बन जायगा। भिक्षु! स्मरण रखो प्रमिला पतित्वकी भिक्षा नहीं चाहती, वह पतित्वका दान करती है। या तो तुम मुझे ग्रहण कर लो, नहीं तो स्मरण रखना प्रतिहिंसाकी वह आग जो इस समय मन्द २ सुलग रही है, एकदम धधक उठेगी। और उसका पहला बलिदान होगा—"इन्दिरा"! सावधान! (प्रस्थान)

भिक्षुक—अच्छा ठीक है। तो मुझे सबसे पहले इन्दिराको बचाना होगा।

चौथा अंक
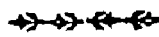
पहला—दृश्य

स्थान—अशोकका राजदरबार

(खास आसनपर सम्राट, पासवाले दो आसनोंपर सम्पुष्टाचार्य्य) और जितेन्द्र बैठे हैं एक ओर स्वामी चिदानन्द और दूसरी ओर प्रमिला खड़ी है।)

अशोक—स्वामीजी! प्रमिला तुम्हें राजा मृगेन्द्रकी हत्याका अपराधी बताती है साध्य हो तो अस्वीकार करो।

चिदानन्द—अस्वीकार करता हूं। क्योंकि जो व्यक्ति अभी जीवित है उसकी हत्याका अपराध लगाना ही हास्यास्पद है।

अशोक—प्रमिला क्या कहती हो?

प्रमिला—क्या कहूं? (एक ताली बजाकर) जिन व्यक्तियोंके सम्मुख हत्या की गई है, वे स्वयं आये जाते हैं।

(चार व्यक्तियोंका प्रवेश)

अशोक—तुम लोग साक्षी हो?

१ व्यक्ति—हां भगवन्!

अशोक—अपने धर्मको साक्षी रखकर तुम सच्ची घटनाका वर्णन करो।

१ व्यक्ति—भगवन्! मैं केवल इतना जानता हूं कि, जो धड़ पेश किया गया है, वह मृगेन्द्रका ही है।

२ व्यक्ति—मैं शपथ पूर्वक कह सकता हूं कि, कई दिनोंसे स्वामीजी और मृगेन्द्रमें मनोमुटाव था।

३ व्यक्ति—मैं राजा मृगेन्द्रका शरीररक्षक हूं, मैं सत्यको साक्षी मानकर कहता हू कि, स्वामीजीको मृगेन्द्रको हत्या करते हुए मैंने देखा।

४ व्यक्ति—मैं ईश्वरको साक्षी जानकर कहता हूं कि, क्या कहता था देखो भूल गया। हा, क्या प्रमिला रानी! हां, हा, स्वामीजीने मृगेन्द्रकी हत्या की, हां यही बिलकुल ठीक है।

अशोक—आचार्य्य! कहिये आपकी क्या सम्मति है?

सम्पुष्टा—इसपर और क्या सम्मति होगी? इन साक्षियोंसे स्पष्ट है कि, विद्यानन्दने मृगेन्द्रकी हत्या की और उसके लिये इसे नरकमें लेजाकर तप्त तेलके कढावमें डालना चाहिये।

अशोक—मेरी भी यही राय है। स्वामीजी! मुझे बड़ा दुःख है कि आपके लिये इस प्रकारकी व्यवस्था दी जा रही है। मैं नहीं जानता था कि, आप इसके वेषमें

जितेन्द्र—ठहरिये! भगवन ठहरिये! आगेके शब्द उच्चारणकर स्वामीजीका अपमान न कीजिये। ईश्वर जानता है, स्वामीजी इस सम्बन्धमें बिलकुल निरपराध हैं। उनका हृदय देववाणीसे भी अधिक शुद्ध और शिशुहृदयसे भी अधिक सरल है। भगवन्! इतना अविचार न कीजिये। पिताजी पर इनका बहुत ही निर्मल प्रेम है। वह प्रेम लोभसे कलुषित नहीं है, तृष्णासे प्रेरित नहीं है, स्वार्थसे दूषित नहीं है। वह निस्वा-

र्थप्रेम त्यागसे भी अधिक उज्वल, और कर्त्तव्यसे भी अधिक स्वच्छ है। सम्राट्! स्वामीजीका कथन बिलकुल सत्य है। पिताजी अभीतक जीवित हैं।

अशोक—युवराज तुम्हें क्या हो गया है? जो तुम अपने पिताके घात करनेवालेका पक्ष लेते हो। क्या ये साक्षी झूठे हैं?

(तेजीसे एक बौद्ध भिक्षुकका प्रवेश।)

बौ भि०—हां झूठे हैं। बिल्कुल झूठे हैं! सम्राट्! मैं अबतक जानता था कि, तुम न्यायी हो—दूरदर्शी हो—दयालु हो। मगर आज मैं समझा कि, ये केवल कहनेकी बातें हैं। न्याय करनेकी शक्ति तुममे बहुत कम है। देवताओंके प्रियदर्शी सम्राट्! यदि विचार करनेकी योग्यता नहीं है तो फिर, व्यर्थही क्यों न्यायका आडम्बर धारणकर रक्खा है? यदि तुममें न्याय करनेकी सामर्थ्य नहीं है तो क्यों इस सिंहासनपर बैठे हो? सिंहासनको छोड़ दो, राजदण्डको फेंक दो, और अपने असमर्थ मस्तक परसे राजतिलकको पोंछ डालो। सम्राट्! क्या तुम हृदयपर हाथ रखकर कह सकते हो कि, स्वामीजी दोषी हैं, स्वामीजी हत्यारे हैं, महाराज! कहते हुए जराभी जबान न रुकी, जरा भी मन मैला न हुआ। यदि स्वामीजी हत्याकारी हैं, तो फिर बाकीही क्या रहगया, फिर तो कहो कि, कमलकुत्सित हैं, वायु स्थिर हैं, सूरज ठण्डा है। हा, हा, कहो कि सुमेरु चंचल हैं, प्रेम इन्द्रजाल है, विश्वास छल है, बोलो सम्राट्! बोलो चुप क्यों हो, कहो, कहो, स्वामीजी हत्याकारी हैं।

अशोक—(अनमने भावसे) चाहे मैं कहूं या न कहूं । पर प्रमाण तो मिलते जा रहे हैं ।

बौ० भि०—झूठे हैं। सब प्रमाण झूठे हैं। सम्राट्! साधारण मनुष्यकी दृष्टिमें चाहे ये प्रमाण महत्व रखते हों पर तुम्हारे समान उच्च कोटिके मनुष्योंके लिए ये प्रमाण पर्याप्त नहीं। जरा स्वामीजीके चेहरेकी ओर देखो, जरा उनकी इन सरल आंखोंकी ओर देखो, जरा उनकी इस असमयमें छाई हुई मुस्कराहटकी ओर देखो। और फिर हृदयपर हाथ रखकर पूछो कि, दोषी कौन है? इस चेहरेकी ओर देखकर भक्ति करनेको जी चाहता है या दण्ड देनेको? क्या हत्याकारीका चेहरा इसी प्रकार सरल रहता है? क्या उसके चेहरेसे इसी प्रकार विश्वास, कर्त्तव्य और प्रेमकी धाराएं बहा करती हैं? सम्राट! राजनीतिमें मेरा दखल नहीं है, राजकार्य्यमें बोलना मेरे लिए अनधिकार चेष्टा है। मगर तौ भी मैं पूछता हूं कि, वे प्रमाण सच्चे हैं या ये प्रमाण? न्यायकी डींग हांकनेवाले सम्राट! क्या तुम्हारा यही न्याय विचार है कि, प्रत्यक्ष हत्याके इरादेमें पकड़े जानेवाले सम्पुष्टाचार्य्य तुम्हारे बराबरीका आसन पावें, और स्वामीजीके समान उच्च पुरुष प्रमिलाके समान नीच स्त्रीके तुच्छ प्रमाणों द्वारा प्राणदण्ड भोगें। बोलो! सम्राट्! बोलो क्या इसी न्याय विचारसे तुम भारतका शासनकर रहे हो?

सम्पुष्टा—ऐ भिक्षुक! चुप रह। तेरी इतनी मजाल कि,

तू इस प्रकार सम्राट्के विरुद्ध मनमाने ढंगसे बोले। क्या तू अपने प्राणोंका मोह छोड़कर आया है।

अशोक—आचार्य्य! इस युवक भिक्षुकको आप कुछ न कहें। इसकी तीखी झिड़कियें मुझे बहुतही प्रिय लग रही हैं। वास्तवमें यह बिलकुल सत्य कह रहा है।

बौ० भि०—आचार्य्य! प्राणोंका मोह तो तुम्हारे समान पाखण्डी और धर्मकी आड़में मनमानी करनेवाले भिक्षुकोंको रहता है। हमको प्राणोंसे क्या मोह?

चिदानन्द—भिक्षुक! शान्त रहो, क्यों व्यर्थमें वितण्डावाद बढाते हो।

बौ० भि०—अच्छा स्वामीजी! आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। पर उसके पहले मैं प्रमिलासे एक बात पूछा चाहता हूं। (प्रमिलासे) रानी! तू एकबार फिरसे हृदयपर हाथ रखकर अपने मनुष्यत्वको जागृतकर कह तो सही कि, "चिदानन्द मृगेन्द्रके हत्याकारी हैं।" जरा मैं भी तो सुनूं।

प्रमिला— (लड़खड़ाकर) हां कहती . हूं वा...नहीं चिदानन्द . अपराधी ..ना...नहीं ..हां...अपराधी . हैं।

बौ० भि०—सम्राट्! क्या अब भी आपको सन्देह है? यदि है तो और सुनिये आज सवेरेसे पूर्व मैंने मृगेन्द्रको इसी नगरीमें प्रत्यक्ष देखा है। लेकिन स्वामीजीके ही उपदेशानुसार वह अभी प्रगट नहीं होना चाहता। कहिये और भी सन्देह है।

अशोक—चाहे मेरा सन्देह दूर होगया हो, पर राजनीतिके

प्रयत्न बिलकुल सफ़ल हो रहा है पर नहीं वह केवल भ्रम था। वह विजयही पराजयका रूपान्तर थी। मेरा जीवन दिन दिन पतनके गड्ढेकी ओर गिरता चला जा रहा है। जान पडता है ईश्वरही मुझसे विपरीत है। पर कोई परवाह नहीं। विधाता! यदि तुमने मुझे स्वर्गसे गिराई है तो नरकमें जाऊंगी। परमात्मा! यदि तुमने मेरा पक्ष नहीं लिया तो तुम्हारे विपक्षमें छाती फुलाकर खड़ी होऊंगी। प्रमिला इस प्रकार लौटकर निष्कर्म नैराश्यमें जाना पसन्द नहीं करती। या तो वह अपनी प्रतिहिंसाकी ज्वालामें तमाम संसारको भस्मकर डालेगी, या स्वयं जलकर राख हो जायगी।.. सबसे पहले अब इस जितेन्द्र कोही खपाना होगा, यही मेरा प्रधान शत्रु है। और इसके लिए ऐसा सुअवसर फिर कभी नहीं मिल सकता। यह ताड़पत्रका पर्चा...यह चिदानन्दकी मृत्युका आज्ञापत्र! हाः हाः हाः। परन्तु वह बौद्धभिक्षु! ना ...

(सम्पुष्टाचार्य्यका प्रवेश)

सम्पुष्टा—प्रमिला! तुम यहा क्या कर रही हो?

प्रमिला—कर रही हूं तुम्हारा सिर, कर रही हूं तुम्हारा श्राद्ध! जलमुहेको यहां भी चैन नहीं पड़ती।

सम्पुष्पे—प्रमिला! आज तुम्हें क्या होगया है?

प्रमिला—मैं कहती हूं हटजा यहाँसे, लुच्चे, कमीने, टुच्चे, पाजी। आचार्य्य बना हुआ है, गधे चरानेकी भी अक्ल है? चला जा यहाँसे नहीं तो अभी प्रमिलाके कोपका शिकार होगा।

सम्पुष्टा—ना, ना प्रमिला रानी ! तुम कुपित मत होओ । मैं जाता हूँ । यह चला । (जाना चाहता है)

प्रमिला—(शान्त होकर) ना, ना, मत जाओ तुम्हीं तो प्रमिलाके प्रधान सहायक हो । देखो मैं एक बात कहती हूं । मन लगाकर सुनो ।

सम्पुष्टा—हां, हां, कहो ।

प्रमिला—आजकी घटनासे तुम्हें मालूम होगा कि, हमारा प्रधान शत्रु जितेन्द्र है । और सबसे पहले हमें उसीका नाश करना चाहिये ।

सम्पुष्टा—बिलकुल ठीक ! एकदम ठीक ।

प्रमिला—लेकिन फिर प्रश्न यह होता है कि, उसे नष्ट किस प्रकार किया जाय ? वह तो सम्राट्का दाहिना हाथ हो रहा है । सम्पुष्टा—यह तो बहुत ही कठिन प्रश्न है । (गर्दन हिलाकर) बड़ा ही कठिन है ।

प्रमिला—लेकिन उसके लिये यह ताड़पत्रका परचा !

सम्पुष्टा—बिलकुल ठीक । यह ताड़पत्रका पर्चा ! बिलकुल ठीक ।

प्रमिला—लेकिन इसका किया क्या जाय ?

सम्पुष्टा—यह और भी कठिन प्रश्न है ! इसका किया क्या जाय ?

प्रमिला—सचमुच तुम बज्र मूर्ख हो । देखो अब मैं बतलाती हूं । इस ताड़ पत्रके पर्चेमें एक व्यक्तिको गर्म तेलके कढ़ावमें

तल देनेकी आज्ञा लिखी हुई है। फिर चाहे वह व्यक्ति कोई ही क्यों न हो। तुम अपने विश्वस्त आदमीको यह पर्चा देकर उसे जितेन्द्रके पास भेजो। वह जितेन्द्रको जाकर कहेगा कि, सम्राट् आपको बुला रहे हैं। वह फौरन आनेको तैय्यार हो जायगा बस फिर वह उसे रथपर बैठाकर ताड़पत्रके सहित नरकाधिपति को सौंप आवेगा। बस फिर उसकी मृत्यु निश्चित है।

सम्पुष्टा—(उछलकर) प्रमिला! वास्तवमें तुम शैतानकी प्रतिमूर्त्ति हो। अच्छा तो अब मैं जाता हूं। और जानेके पूर्व एक शुभ समाचार और कह जाता हूं। इन्द्रपुरमें विशाखा नन्दने अपनी आत्महत्या कर ली।

प्रमिला—एँ, क्या कहा, आत्महत्या! अत्म हत्या! प्रमिला तुम्हारी राक्षसी प्रवृत्ति चरितार्थ हुई। (उन्मत्तसी) हाः हाः हाः वृद्ध मन्त्री! (भागती है)

(सम्पुष्टाचार्य सोचता हुआ एक ओर जाता है)

(दृश्य परिवर्तन)

(सम्राट् अशोकका नरकोद्यान)

(द्वारपाल और नकली जितेन्द्र)

जितेन्द्र—यह उद्यान कितना रमणीय है? द्वारपाल! इस उद्यानका क्या नाम है?

द्वार०—इसको "नरकोद्यान" कहते हैं।

जितेन्द्र--एँ, ऐसे सुन्दर उद्यानका ऐसा भयंकर नाम?

द्वार०—असली नरक इस उद्यानके अन्दर है, जो तुम्हें शीघ्र ही दिखलाई देगा।

जितेन्द्र—चक्रवर्तीने मुझे यहां बुलाया है, मगर वे अभीतक नहीं आये!

द्वारपाल—कौन चक्रवर्ती!

जितेन्द्र—चक्रवर्ती क्या दो चार हैं? वेही देवताओंके प्रिय दर्शी सम्राट् अशोक।

द्वार०—मूर्ख कहींके। सम्राट् यहां क्यों आने लगे! यहां तो वेही आते हैं जो मृत्युदण्डके अपराधी होते हैं।

जितेन्द्र—मालूम होता है, शायद सारथीने मुझे भूलसे कहीं दूसरी जगह उतार दिया है।

द्वार०—नहीं, बिलकुल ठीक स्थानपर छोड़ा है।

जितेन्द्र—चक्रवर्तीसे मुझे मिलना जरूरी है। मैं जाता हूं (जाना चाहता है)

द्वार०—मूर्ख! यहांसे लौटकर कोई नहीं जा सकता।

जितेन्द्र—मुझे रोकनेवाला कौन है? देखूं उसकी सामर्थ्य!

(एक भीमकाय मनुष्यका प्रवेश)

भी० का—ठहर जा! ओ धृष्ट अपराधी! बाहर जानेकी कोशिश मत कर। चाहे असली नरकके यमराजके हाथसे मनुष्य बच जाय, पर इस नकली नरकसे बचकर जाना बहुत कठिन है। अपराधी! तुमने बहुत भयंकर अपराध किया है। और उसके लिए सम्राट्की ओरसे तुम्हें उस तेलके कढ़ावमें तलडालनेकी

आज्ञा मिली है। चार घड़ीके पश्चात् उस आज्ञाका पालन किया जायगा। इस बीचमें यदि तुम्हें इष्टदेवका स्मरण करना हो तो कर लो। देखो, यह तुम्हारा आज्ञापत्र! (ताड पत्रका पर्चा देता है)

जितेन्द्र—इसमें तो मेरा नाम नहीं है।

नरकाधिपति—इस प्रकारके दुर्बल प्रमाणोंसे तुम नहीं बच सकते। तुम अपने इस अमूल्य समयको यों नष्ट न करो। चार घड़ीके पश्चात यमदूत तुम्हें ले जाएंगे (जाता है)

जितेन्द्र—(भर्राई आवाजसे) परमात्मा! कैसी विपत्तिमें आकर फँस गया हूं। कोई छुटकारेका उपाय नहीं है ...

(नेपथ्यमें—" है, युवराज! इधर देखो")

जितेन्द्र—(पीछेकी ओर देखकर) ओह! कौन ? उपगुप्त श्रेष्ठी। श्रेष्ठीजी! आप यहां कैसे आ पहुंचे ?

उपगुप्त—युवराज! तुम्हारे उपकारका बदला चुकानेके लिये मैं यहां आ पहुंचा हूं। तुमने एक बार अपनी जानको बेचकर मुझे छुडाया था, ईश्वरने उसी उपकारका बदला चुकानेके लिये मुझे यह सुयोग दिया है। युवराज! बस अब तुम शीघ्रतापूर्वक आकर यहां छिप जाओ और मुझे वहां बैठ जाने दो। रात होनेपर जब यहांका सब हिसाब पूरा हो जाय, तब तुम इस झाड़पर चढ़कर उस पार कूदकर निकल जाना।

जितेन्द्र—श्रेष्ठीजी! क्षमा कीजिये, जितेन्द्रकी बुद्धि अभी इतनी स्वार्थलिप्त नहीं हो गई है कि वह अपने प्राणोंके बदलेमें

आपके सदृश महात्माका बलिदान दे। श्रेष्ठीजी! मैं इतना नीच नहीं हो गया हू जो कुन्दके सदृश साध्वी स्त्रीका जीवन मिट्टी कर अपने प्राण बचाऊं।

उपगुप्त—युवराज! कुन्दका जीवन अब चिन्ताकी सामग्री नहीं है। उसका जीवन तो अब पवित्र हो चुका। उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। युवराज! अब तुम शीघ्रता करो। इस तरह हठधर्मी करके तुम उपगुप्तसे नहीं जीत सकते। उसका निश्चय कभी व्यर्थ नहीं जाता। प्रथम तो मेरे जीवन की चिन्ता करनेका ही कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि, अग्नि भी पञ्च महाभूतोंमेंसे एक है। और पच महाभूतोंपर विजय पाना सत्प्रवृत्ति वाले मनुष्यके लिये कोई कठिन नहीं। इस-लिये युवराज! तुम शीघ्रता करो।

जितेन्द्र—श्रेष्ठीजी! आपने तो मुझे बडे पेंचमें ले लिया। और, आपकी आज्ञाको मैं शिरोधार्य्य करता हूं। पर है यह बडी ही स्वार्थपरता।

(जितेन्द्र लताओंकी आडमें चला जाता है उपगुप्त उसके स्थान पर बैठता है)

(यमदूत प्रवेश करते हैं और उपगुप्तको पकडकर ले जाते हैं।)

(दृश्य परिवर्त्तन)

(स्थान नरक, यमदूत खडे हैं, एक ओर तेलका कढ़ाव चढ़ रहा है, चारों ओर चक्र चल रहे हैं)

(उपगुप्तको लेकर यमदूत प्रवेश करते हैं, और उसे गर्म तेलके

कढ़ावमें डाल देते हैं, उपगुप्त "नमोवुद्धाय" की ध्वनि करते हुए पड़ जाता है। एकदम तेल ठण्डा हो जाता है। उपगुप्त उस कढ़ावमें समाधि लगाये हुए "नमो बुद्धाय" की ध्वनि करता है। यह देखकर यमदूत क्रोधित होकर उसके नीचे और ईंधन डालते हैं, पर सब व्यर्थ होता है।)

यमराज—(आश्चर्य्य चकित होकर) आश्चर्य्य है! ऐसी घटना आजतक देखनेमें नहीं आई। संतरी! जाओ चक्रवर्तीको तो बुला लाओ।

(थोड़ी देर सब लोग स्तब्ध खड़े रहते हैं, इतनेमें चक्रवर्ती प्रवेश करते हैं !

चक्रवर्ती—क्यों क्या, बात है?

यमराज—भगवन्! कितना आश्चर्य्य है। इस अपराधीको इस कढ़ावमें डाले कितना ही समय हो गया मगर इसपर कुछ असर नहीं होता।

चक्रवर्ती—यह अपराधी किसकी आज्ञासे तला जा रहा है?

यमराज—इस ताड़पत्रके आज्ञापत्रसे (पर्चा लाता है)

चक्रवर्ती—ओह! यह तो चिदानन्द स्वामीके लिये लिखा गया था। यह यहां कैसे आ गया? अभी तो भयङ्कर अनर्थ हो जाता।

उपगुप्त—भगवन्! यह अनर्थ क्या? इससे भी भयङ्कर अनर्थ होनेवाला था। यदि मैं कुछ समय और नहीं आता तो युवराज जितेन्द्रकी जान गई ही थी।

अशोक—सो कैसे ?

उपगुप्त—इस बातका उत्तर वे स्वयं देंगे। उन्हें यहां बुला लीजिये। वे उद्यानके अन्दर लताओंकी आड़में छिपे हुए हैं।

अशोक—प्रहरी, शीघ्रतापूर्वक युवराजको लाओ।

(प्रहरी जाता है और युवराजको लेकर आता है)

युवराज—श्रेष्ठीजी! आप बच गये। मालूम होता है अग्नितत्वपर आपने विजय प्राप्त कर ली। भगवन्! यदि श्रेष्ठीजी न आते तो आज मेरी जान गई ही थी। सम्पुष्टाचार्य्यके षड्यन्त्रने आज मेरा जीवन नष्ट किया ही था। इन्होंने अपनी जानकी चिन्ता न कर मेरे जीवनकी रक्षा की।

अशोक—धन्य है! श्रेष्ठीजी! आप सचमुच महात्मा हैं आपके दर्शनोंका अलभ्य लाभ प्राप्तकर मैं कृतार्थ हुआ। आपने मेरे जीवनदाताको लौटाकर मुझे बहुत आभारी किया है। आप हीके समान भिक्षु-रत्नोंसे बौद्धधर्म चमक रहा है। कृपाकर मुझे अपने चरणोंमें स्थान दीजिये। आचार्य्य! इन घटनाओंसे मेरे जीमें इन नाममात्रके आचार्य्योंके प्रति घृणा पैदा हो गई है। यदि इसी प्रकारके लोग इस धर्ममें रह गये तो सचमुच इस उन्नत धर्मका बहुत शीघ्र पतन हो जायगा। इसलिए मैं चाहता हूं कि एक ऐसी सभा की जाय जिसमें सब साधुओंको निमन्त्रित किया जाय। उनमेंसे जो योग्य जंचे उन्हें तो यह वेष धारण करनेकी अनुमति दी जाय, बाकी सबसे पीतकफनी और खड़ाऊं छीन लिये जायं। बिना ऐसा किये धर्मका संशोधन न होगा।

उपगुप्त—राजन्! आपका बताया हुआ यह उपाय बहुत ही उचित है। शीघ्र ही ऐसी सभाका आयोजन होना चाहिये पर उसके भी पहले इस नरकका विध्वंस होना जरूरी है। यह आपके राज्यके लिये कलंक है।

अशोक—तथास्तु! आज ही संध्याके पूव नरक विध्वंस कर दिया जायगा। (सब जाते हैं)

तीसरा-दृश्य

(प्रमिला)

प्रमिला—ओफ! हत्या! विशाखानन्द! .. तुमने... . आत्महत्या ....(कांपकर) ना... . मेरे... ..स्वामी... ..मुझे क्षमा...(चौंककर)...क्या . कहा क्षमा ..नहीं . है?.. विश्वासघात ..के लिए . क्षमा. नहीं · (चीखकर) एकबार...एकबार और...बस...(हंसकर) क्या कहा? क्षमा...कर दिया?...(डरकर) क्या...नहीं (बाल नोचकर) मैं.. यह...कौन . कौन मृगेन्द्र? कौन. कौन...इन्दुमती...कौन...अशोक . ना. ना क्षमा...कर दो...एकबार...क्षमा—करो। क्षमा ..लेकिन...ना मैं...क्षमा...न मांगूगी। परमात्मा ..से...लड़ूंगी। उससे...युद्ध करूंगी।—उसके...विरुद्ध...छाती...फुलाकर खड़ी होऊंगी। संसार यदि मेरे विरुद्ध है तो उससे भी लड़ूंगी। यदि मेरी आत्मा मेरे विरुद्ध है तो उससे भी युद्ध करूंगी। मैं अपने आप से लड़ूंगी। क्षमा! प्रमिला न तो क्षमा करना जानती है न

क्षमा मागना जानती है। तब क्या करूं ? मेरे पास अब वह सत्ता नहीं। विना सत्ताके जीवन धारण करना व्यर्थ है। तो क्या करूं ? आत्महत्या ? हां यही ठीक है। मैं अपने स्वामीके मार्गका अवलम्बन करूंगी। पर नहीं उसके पहले एक कार्य्य और करना होगा ? यदि बौद्धभिक्षु मुझे नहीं मिला है तो मैं भी उसे किसीसे न मिलने दूंगी। मेरा सबसे पहला कार्य्य इन्दिराकी हत्या करना है। (दोनों मुट्ठी बाधकर) इन्दिरा ! इन्दिरा !! तुझने मेरा सर्वनाश किया .पर याद रखना...हा . हा . हा (चली जाती है)

चौथा-दृश्य

(सम्राट अशोक और उनका एक गुप्तचर)

सम्राट्—क्या कहा ? किसी उत्तेजित अधिकारीने एक भिक्षुककी हत्या कर डाली ?

गुप्तचर-हां भगवन् ! महासभाकी सूचनाका बहुत शीघ्र प्रचार करनेके उद्देश्यसे भिन्न २ अधिकारियोंने भिन्न २ उपायोंसे कार्य्य लिया। किसीने कहा सम्राट् एक भारी भोज देंगे उसमें सब भिक्षुओंको निमन्त्रण है, किसीने कहा सम्राट् सब भिक्षुओंके दर्शन करना चाहते हैं। आदि, अनेक युक्तियोंसे काम लिया गया। पर एक अधिकारीने इस तरहकी घोषणा करवाई कि, जो भिक्षु महा सभामें सम्मिलित न होगा उसका शिरच्छेद किया जायगा। इस घोषणाको सुनकर सम्पुष्टाचार्य्य दलका

एक भिक्षुक बहुत उत्तेजित हो उठा। उसने आवेशमें आकर उस अधिकारीको कई ऐसे अपशब्द कह डाले जिससे उसे क्रोध आ गया। और बिना सोचे समझे उसने उसका सिर काट लिया। तभीसे सारे भिक्षुमण्डलमें भारी सनसनी फैल रही है। आश्चर्य तो यह है कि, इस सम्वादको सुनकर सम्पुष्टाचार्य्य बहुत प्रसन्न है।

अशोक—(चिन्तित भावसे) अच्छा अब तुम जाओ। (गुप्तचर जाता है) हाय! अनर्थ हो गया। अधिकारीने गजब कर डाला। अब तो सम्पुष्टाचार्य्यको मनमानी करनेका अवसर मिलेगा। हाय! क्या सोचा था, क्या हो गया। इसमें तो सन्देह नहीं कि, अब मेरे जीवनके दिन पूरे हो गये। इस रूक्ष जीवनके सरस होनेके पूर्व ही मुझे संसार छोड़ना पड़ेगा। फिर भी मुझे मृत्युका डर उतना नहीं सता रहा है, जितना यह झूठा कलङ्क।

(इन्दिराका प्रवेश)

इन्दिरा—भैया! आज आप इतने चिन्तातुर क्यों हैं?

अशोक—(सूखी हंसी हसकर) क्या कहूं, इन्दिरा! आज एक भारी अनर्थ हो गया है। हमारे एक अधिकारीने आवेशमें आकर एक भिक्षुकका सिर काट डाला। जिसके कारण सारे भिक्षुसमाजमें बड़ी सनसनी फैल रही है। सम्पुष्टाचार्य्य मन-माने ढङ्गसे भिक्षुओंको भड़का रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि, अब मेरे जीवनके दिन...

इन्दिरा—(आंसू भर कर) ओफ! सचमुच अनर्थ हो गया। पर भैया! इसके लिए तुम दोषी कैसे? तुम्हारी तो यह आज्ञा न थी।

अशोक—इससे क्या हो सकता है? सम्पुष्टाचार्य्यके मत्सर पूर्ण मस्तिष्कमें यह बात क्यों आने लगी?

इन्दिरा—तो क्या इसका कोई उपाय नहीं?

अशोक—है, यदि सम्पुष्टाचार्य्यसे अधिक प्रभावशाली भिक्षुक आकर इसका निर्णय करे तो अवश्य यह अपयशका टीका धुल सकता है।

इन्दिरा—इसके लिए उपगुप्ताचार्य्य क्या कम हैं?

अशोक—हैं तो अवश्य, पर उनका प्रभाव अभी उतना तेजोमय नहीं है, जिससे सम्पुष्टाचार्य्यका प्रभाव मन्द होजाय। इस समय केवल आचार्य्य मोग्गलीपुत्रतिष्य ही ऐसे हैं जो सम्पुष्टाचार्यके प्रभावको मलीन कर सकते हैं। पर उनके मिलनेकी कोई आशा नहीं की जा सकती।

इन्दिरा—जरूर की जासकती है। भैया! यदि ऐसा ही है तो आप बिल्कुल चिन्ता न करें। नियत समय पर आचार्य को उपस्थित करनेका भार मैं अपने सिर लेती हूं। किसी प्रकारसे उन्हें ठीक समय पर बुला दूंगी।

अशोक—पर उसका साधन क्या है?

इन्दिरा—वेही तरुण भिक्षुक! जो उनका पत्र लाये थे। (लज्जित होकर चली जाती है)

अशो—यह इन्दिरा कौन हैं सो मैं स्वय नहीं जानता। यह स्वर्गकी महिमा हैं या विश्वासकी प्रतिमा है, सरलताकी प्रतिमूर्ति है या ईश्वर का आशीर्वाद हैं। न मालूम किस पुण्य बल से मुझे ऐसी भगिनी प्राप्त हुई है। चलूं, देखू सभामें क्या हो रहा हैं।

(प्रस्थान) (पटाक्षेप)

पांचवां दृश्य

(सम्पुष्टाचाय, उपगुप्ताचार्य, सम्राट् अशोक, वीताशोक आदि अपने २ आसनपर बैठे है दूसरी बाजू बहुतसे बौद्ध भिक्षु बैठे हुए हैं।)

सम्पुष्टा—(व्यास पीठपर खड़े होकर) भिक्षु ओ! आप इस बातको अब अच्छी तरह समझ गये होंगे कि यह महासभाका कार्य्य किसी पवित्र उद्देश्यसे प्रारम्भ नहीं किया गया है। बल्कि केवल हम लोगोंको अपमान करनेके नीच उद्देश्यसे ही इसका विधान हुआ है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उस धर्मगुरुकी हत्या हैं। आजकल समाट्का जी धर्म की ओरसे बिलकुल हट गया है। सम्राट् यों तो बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। अबतक वे हम लोगों-का आदर करते थे। लेकिन कुछ समयसे उनकी मतिमें फेर हो गया हैं इसलिए यद्यपि उनके विरुद्ध किसी प्रकारकी व्यवस्था देते हुए मेरा हृदय बहुत दुःखित हो रहा हैं। पर क्या करूं सम्राटकी अपेक्षा भी धर्म मुझे अधिक प्रिय हैं।

उपगुप्ताचार्य्य—सम्पुष्टाचार्य! ठहरो तुम्हारे मुंहसे अपनो

ऐसी व्याख्या सुनकर धर्म भयसे कांप उठेगा! सत्य सूख कर ठिठुर जायगा! विश्वास मूर्च्छित होकर गिर पड़ेगा! न्याय आर्त्तनाद कर उठेगा। सम्पुष्टाचार्य्य कमसे कम धर्मकी आड़में इतना मनमाना मत करो।

वीताशोक—भगवन्! क्या आप निर्दयी सम्पुष्टाचार्य्य के हाथमें अपने जीवनकी बागडोर देंगे?

अशोक—भैय्या! क्या किया जाय? आजतककी सब व्यवस्थाएं इन्हींके हाथसे हुई हैं, अब यदि इस समय मैं अपने प्राण बचानेके लिए ऐसा करूं तो संसार मुझे अन्यायी कहेगा!

वीताशोक—(सिरपर हाथ रख कर) हा! अदृष्ट!

सम्पुष्टाचार्य—भिक्षुओ! अब इस मामलेमें विलम्ब करना उचित नहीं। सम्राट! धर्मगुरुकी हत्या करनेके अपराधमें मैं तुम्हें प्राण दण्डका दण्ड देता हूं। यदि अपने जीवनकी रक्षाके निमित्त तुम इसे स्वीकार न करोगे तो यह भिक्षुओंकी महासभा बलात्कार तुम्हें ऐसा करनेके लिए मजबूर कराएगी।

(धीरे २ आचार्य्य मोग्गलीपुत्र तिष्यका प्रवेश)

(अशोक उनके पैरों पर गिर पड़ता है।)

(दोनों हाथ उठाकर) आयुष्यमान् भवति!

अशोक—भगवन! आपका यह आशीर्वाद क्या सत्य होगा? मुझे प्राण दण्डका दण्ड मिल चुका है।

मो०—सम्राट्तुम! निरपराध हो। भिक्षुओ! आज तुमसे एक भारी अपराध बन पड़ने वाला था। सम्पुष्टाचार्य्य! अपने

ही षड्यन्त्रसे एक भिक्षुककी हत्या करवा कर तुम अपनी प्रति-हिंसा चरितार्थ करना चाहते थे ? भिक्षुओ ! क्या तुम भी सम्राटको अपराधी समझते हो। यदि समझते हो तो सुनो मैं तुम्हारा समाधान करता हूं। इसी सम्पुष्टाचार्य्यने एक अधिकारीको घूस देकर उस भिक्षुककी हत्या करवाई है यदि विश्वास न होतो तुम पूछ सकते हो। क्या तुम्हें विश्वास है कि, देवताओंके प्रियदर्शी सम्राट इस प्रकार बौद्धभिक्षुकी हत्या करनेकी आज्ञा देंगे।

सब—कभी नहीं, कभी नहीं, सम्राट् निरपराव है। सम्राट् अशोककी जय ! आचार्य्य मोगलीपुत्रतिष्यकी जय !

मो०—सम्पुष्टाचार्य ! तुम्हारे समान धर्मविहीन भिक्षुओंके कारण इस समय बौद्धधर्म संसारमें बदनाम हो रहा है अत मैं आज्ञा देता हूं कि तुम और तुम्हारे समाजके और भिक्षु इसी समय अपनी कफनी और कमण्डल रखकर गृहस्थ बन जाय।

(सम्पुष्टाचार्य्य और उसके साथी अत्यन्त विषण्ण वदनसे कफ़नी और कमण्डल रखकर सफेद वस्त्र पहनते हैं)

सब—सम्राट अशोककी जय ! भगवन् बुद्धकी जय !

(पटाक्षेप)

छठा दृश्य

स्थान–वेणुवन

(जितेन्द्रके वेषमें प्रणयिनी)

प्रणयिनी—कैसा भयङ्कर दृश्य है! चारों ओर बादल घिर रहे हैं। बिजली रह २ कर चमक रही है। कभी २ जोरसे कड़क उठती है। आंधी भयङ्कर वेगसे चल रही है। इस समय भी वह स्मृति ना जाने दो!! अभी ये भयंकर बादल अपनी सब भयकरताको छोड़कर शीतल सलिलकी वर्षा करने लग जाएंगे। माताके स्नेहकी तरह, कर्त्तव्यके रुदनकी तरह, बरस कर सारी पृथ्वीको शीतल करदेंगे।

(भिक्षुकीके वेषमें कुन्दका प्रवेश)

कुन्द—कौन कुमार जितेन्द्र!

प्रणयिनी—(कुछ देर देखकर) कौन कुन्द! देवि!

तुम्हारा यह वेष!!

कुन्द—हाँ कुमार! जिस दिन मैंने अपने मनुष्यत्वको भुला दिया, जिस दिन स्वार्थ लालसासे प्रेरित होकर मैंने तुम्हें शत्रुओंके हाथमें सौंप दिया। उसी दिनसे मुझे वैराग्य उत्पन्न हो आया। संसारसे घृणा हो गई। और तभीसे मैंने यह वेष धारण कर लिया।

प्रणयिनी—भगवन्! जितेन्द्र आपके चरणोंमें नमस्कार करता है। आपका यह त्याग अपूर्व है, भारतीय रमणियोंका उज्वल आदर्श है।

कुन्द—कुमार! इस समय अधिक बात करनेका समय नहीं है। शीघ्र ही एक आकस्मिक विपत्ति घटना चाहती है। उसीसे तुम्हे सचेत करनेके लिए आई हूं।

प्रणयिनी—आकस्मिक विपत्ति! विपत्तियोंका जाल क्या अभीतक नहीं कटा?

कुन्द—नहीं कटा। वह विपत्ति ऐसी भयानक है जिसके सम्मुख भूतकालिक विपत्तिया बिलकुल फ़ीकी पड जायंगी। सम्पुष्टाचार्य्यने अपने अपमानसे क्रुद्ध होकर इस बार एक बड़े षड्यन्त्रकी योजना की है। 'आज आधी रातके समय स्वयं सम्पुष्टाचार्य्य और रानी बुद्धिमती अशोकके महलमें जाकर उनकी हत्या करेंगे। और उनके साठ हजार भिक्षुक सम्राटके तमाम पक्षपातियोंका वध करेंगे। जिसमें तुम्हारा और मन्त्री राधागुप्तका भी नाम हैं। इसलिये आप शीघ्रता पूर्वक मेरे साथ २ चले आइए यहांसे कुछ ही दूरपर प्रतापसिंह नामक एक क्षत्रिय पड़ाव लग रहा है। वहीं चलकर रक्षाकर लीजिये।

प्रणयिनी—क्या कहा? सम्राटकी हत्या! भगवति! क्षमा कीजिये। इस समय मैं आपके साथ नही चल सकता। मुझे सबसे पहले जाकर सम्राटकी रक्षा करनी होगी। क्षमा कीजिये, आपके साथ अधिक समय तक बात भी नहीं कर सकता। आशा है आप फिर कभी दर्शन देनेकी कृपा करेंगी। अच्छा तो बिदा।

कुन्द—कुमार यह क्या कर रहे हो? इस प्रकारकी मूर्खता

मत करो। तुम सम्राट की रक्षा नहीं कर सकते। उनकी रक्षा का दूसरा प्रबन्ध हो जायगा। तुम व्यर्थ ही अपने जीवनको संकटमें न डालो।

प्रणयिनी—भगवति! इस समय कर्त्तव्यकी पुकारके आगे मुझे कुछ भी सुनाई नहीं पडता है। स्वामीकी रक्षाके निमित्त स्त्रीका जान देना आर्यललनाओंके लिये नई बात नहीं है। भगवति! मुझे अब न रोकिए।

कुन्द—तो क्या तुम कुमार जितेन्द्र नहीं हो?

प्रणयिनी—नहीं, जैसा मेरा वेष है, मैं वास्तवमें वैसा नहीं हू। वास्तवमें मैं एक स्त्री हू। भगवति! विशेष बात करनेका समय नहीं है। मैं जाती हू। (शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान)

कुन्द—आश्चर्य है! कुमार जितेन्द्र स्त्री है।

(दूसरी ओर प्रस्थान)

(दृश्य—परिवर्त्तन)

(स्थान सम्राटका शयन मन्दिर)

(सम्राट एक शय्या पर सोये हुए स्वप्न देख रहे हैं।

सम्राट—(स्वप्नमें) कुमार ··जितेन्द्र···ना···मेरी···काल्पनिक' प्रणयिनी मेरी कामना···के···रंगीन···फूल···

(जितेन्द्रका प्रवेश)

जितेन्द्र—भगवन्! उठिए, उठिए,

(अशोक चौंक पड़ता है)

अशोक—कौन···कौन···कुमार! इस समय यहा कैसे?

जितेन्द्र—अपने हृदय द्वितीयको षड्यन्त्रकारियोंसे साव-धान करनेके निमित्त।

अशोक—कौन षड्यन्त्रकारी ?

जितेन्द्र—भगवन्! इस समय यह बतानेका अवसर नहीं हैं। समय हो गया है। आइए, उधर अंधेरेमें छिपकर बैठ जांय फिर सब हाल आप हो मालूम हो जायगा।

(दोनों अंधेरेमें जाकर बैठ जाते हैं)

(धीरे धीरे सम्पुष्टाचार्य्यका प्रवेश, और गौरसे चारों ओर देखना)

सम्पुष्टा--(भयङ्कर अट्टहास करके) जान पड़ता है राजमाता अपना कार्य्य कर गई। मेरी राहका कांटा अशोक दूर हो गया। हाः हाः हा' अब यह शय्या और भारतका सिंहासन मेरा ही है। वीताशोक तो नामका राजा होगा।...अच्छा तो इस शय्यापर थोड़ा विश्राम लेलूं, (शय्यापर बैठकर) अहा! कैसी कोमल शैय्या है!:बैठते ही शरीरमें एक तरहका नशा सा छा जाता है। अब मैं तो इस वेषको त्याग कर गृहस्थ बनूंगा। पर .गृहिणी ना...जरा विश्राम ले लूं। (चादर ढांपकर सोना)

(धीरे धीरे कटार लिये हुए बुद्धिमती प्रवेश करती है)

बुद्धिमती—प्रतिहिंसा! प्रतिहिंसा!, प्रतिहिंसा!! सुभ-द्रांगी! आज मैं तुझसे सारा बदला चुकाऊंगी। तेरा लड़का सम्राट् हो, और मेरा लड़का उसका सेवक!, इतना अभिमान! अच्छा तो ले उसका फल भोग। प्रातःकाल होनेके पूर्व ही जब

तू सुनेगी कि, तेरा लड़का अब संसारमें नहीं है उस समय हाः हाः हा ! (कटार उठाती है) भोंक दूं। एक पलके अन्दर अभी कार्य्य समाप्त हो जायगा ! (कटार उठाती है) हाथ क्यों कांपता है ? (चौंककर) ओह ! मैं यह क्या दुष्कृत्य कर रही हू ! अपने लड़केकी हत्या कर रही हू। ना...यह पाप मुझसे न होगा। (सोचकर) लेकिन क्या किया जाय, प्रतिहिंसा तो लेनी ही होगी। यदि इस अग्निमें अशोकको न जलाया, तो स्वयं मुझे जलना होगा। अच्छा तो वही हो। चन्द्रमा ! आंखें बन्द कर ले। जगत्के कोलाहल ! शान्त हो जा। और ऐ मीठी नींदमें सोये हुए अशोक ! तू चिरनिद्रामें विश्राम कर !

(कटार भोंक देती है)

(सम्पुष्टाचार्य्य एक चीख मारकर प्राण त्याग देता है)

(दृश्य—परिवर्त्तन)

(स्थान—इन्दिराका शयनागार)

(इन्दिरा अपनी शय्यापर सोई हुई है,प्रमिला नंगी तलवार लिये उसे मारनेको खड़ी है)

इन्दिरा—(स्वप्नमें) प्राणेश्वर ! क्या तुम मुझे अपना परिचय नहीं दोगे ? जादूगर ! तुम्हारा जादू इन्दिरापर नहीं चल सकता... ..

प्रमिला—इस समय यह सुखनिद्रामें सोई हुई अपने प्रेमिकसे मधुर संभाषण कर रही है। यदि इसे यही सुख स्वप्न देखते २ मारा तो प्रतिहिंसा नहीं चुकेगी। वह मृत्यु तो इसके लिए बड़ी

ही सुखप्रद होगी। अच्छा तो पहले इसका यह सुखस्वप्न भङ्ग कर दूं। फिर मारना उत्तम होगा। (तलवारकी नोकसे जगा-कर) इन्दिरा! उठ, तेरे सुख स्वप्नका अन्त कर! अब मरनेको तैय्यार हो जा।

इन्दिरा—(चौंककर) प्रमिला रानी! यह क्या? तुम्हारा यह भयङ्कर वेष! तुम मुझे क्यों मारना चाहती हो?

प्रमिला—आज मैं तुझसे अपना बदला लूंगी। तूने मेरे प्रेमपात्रको छीन लिया है। उसका बदला तेरे प्राण लेकर चुकाऊंगी।

इन्दिरा—अच्छा तो मारो। परन्तु उसके पहले दो क्षणका समय दो, जिसमें मैं अपने हृदयेश्वरका ध्यान करलूं।

प्रमिला—नहीं, यह नहीं हो सकता। (कटार तानती है)

(इतने हीमें पीछेसे बौद्धभिक्षु आकर उसका हाथ पकड़ लेता है)

प्रमिला—(चौंककर) कौन बौद्ध भिक्षु!

बौ० भि०—हां, वही। प्रमिला! अब तेरे अत्याचार असह्य हो उठे हैं। राक्षसी! तू अपने सर्वग्रासमें सारे संसारको ग्रसना चाहती है। पर आजतेरे सब अत्याचारोंका अन्त कर दूंगा। अब क्षमा नहीं कर सकता।

प्रमिला—अच्छी बात है तो वही हो। दुःख है कि, मेरा प्रतिहिंसा अधूरी रह गई। खैर, बौद्ध भिक्षु! मैं चलती हू पर उसके पहले दो क्षणका समय दो, यही मेरी अन्तिम भिक्षा है।

बौद्ध—अच्छी बात है।

(प्रमिला एक डिब्बीमेंसे कुछ वस्तु निकालकर खा जाती है)

प्रमिला—अच्छा, अब मैं तैय्यार हूं। बौद्ध भिक्षु! यदि तुम चाहते तो इस पिशाचिनीको देवी बना सकते थे, इस नरकको स्वर्ग बना सकते थे, तुम्हारे स्पर्शके जादूसे यह लोहकी काल-मूर्त्ति, स्वर्णप्रतिमा बन सकती थी, तुम्हारे स्पर्शसे यह विष अमृत हो सकता था। पर तुमने वैसा नहीं किया, खैर, कोई दुःख नहीं है। अब मैं इस मर्त्यको छोड़कर उस अनन्तकी ओर जा रही हूं, जहांसे लौट कर अभीतक कोई नहीं आया। चलो।
(जाते हैं, इन्दिरा, बेसुध पड़ी रहती है)

(दृश्य परिवर्त्तन)

(अशोकका शयनागार, बुद्धिमती खड़ी है, बीताशोक प्रवेश करता है)

बीताशोक—माताजी! अभी यह चीख किसकी सुनाई पड़ी?

बुद्धिमती—बीताशोक! आज तुम्हारी राहका कण्टक दूर हो गया। तुम्हारी राज्य प्राप्तिका विघ्न हट गया। यह चीख उसी पापात्मा अशोक की थी।

बीताशोक—क्या कहा, अशोक की थी। हाय भैय्या! तुम्हारा अन्त इस प्रकार हुआ। माता! क्या कहूं तुम मेरी माता हो!

पिशाचिनी! तुम्हारे इस व्यवहारके सम्मुख कृतघ्नता भी

चीखमारकर रो रही है। स्वार्थ भी आठ आंसू बहा रहा है। तुम मेरी माता हो, हाय! इस पापका भी कोई प्रायश्चित है? (सोचकर) हां...है...माता! तुम वही कटार जिसने अशोकका रक्त पिया है, मेरे कलेजेमें पार कर दो, मैं तुम्हारा बहुत ही अनुग्रहीत होऊंगा। भगवन्! यह भी इसी मर्त्यलोकका दृश्य है। माता, पुत्रके कलेजेमें छुरी भोंक रही हैं। अच्छा तो इस पापका अब यही प्रायश्चित है। (छुरी लेकर भोंकना चाहता है)

(अशोक कूदकर उसका हाथ पकड़ लेते हैं)

अशोक—(हृदयसे लगाकर) भैय्या! शान्त होओ! दुःखी न होओ। राजमाताने मुझे मारना चाहा था। पर दैवयोगसे मैं बच गया। यह लाश मेरी नहीं, सम्पुष्टाचार्य्य की है।

(राजमाता एक कोनेमें सटक जाती है, बौद्धभिक्षु के साथ प्रमिलाका प्रवेश)

बौ० भि—भगवन्! यदि मैं समयपर न पहुंचता तो यह पिशाचिनी इन्दिराकी हत्या कर डालती।. . ..

(चार साथियोंके साथ प्रतापसिंहका प्रवेश)

प्रताप—यह क्या सम्राट्! क्या इन लोगोंका षड्यन्त्र मेरे आनेके पूर्व ही असफल हो गया?

अशोक—हां, हो गया। आप कौन हैं? (गौरसे देखकर) कौन कलिङ्गाधिपति?

प्रताप—हां, सम्राट्! मैं वही मृगेन्द्र हूं!

(बौद्धभिक्षु और प्रणयिनी दोनों उसके पैर छूते हैं)

अशोक—मालूम होता है, अब मेरा सौभाग्य सूर्य उदय होना चाहता है। मृगेन्द्र! आज तुमने प्रगट होकर मेरे सिर-परका एक भारी कलङ्क मिटा दिया। मित्र! तुम धन्य हो! (दोनों लिपट कर मिलते हैं,) वीर! आज इस प्रमिलाका न्याय विचार करना है। यदि तुम न होते तब तो यह कार्य्य मुझे ही करना पडता! लेकिन, तुमने प्रगट होकर मेरी इस दुविधाको मिटा दिया। लो, अब इस बलाको तुम्हीं सम्हालो।

मृगेन्द्र—(प्रमिलासे) प्रमिला! तुमने अपने कृत्योंसे इस मर्त्यलोकमें भी नरकके दृश्य दिखलाये हैं। तुम्हारे अपराधोंका कोई दण्ड नहीं है। मैं चाहता. पर. ना जाने दो। अच्छा प्रमिला! अपने अपराधोंपर तुम स्वयं पश्चाताप करो। मैं तुम्हें क्षमा करता हूं।

प्रमिला—क्षमा! किसे मुझे? मृगेन्द्र! मै तुम्हारी क्षमा पर लात मारती हू। मैने न तो कभी किसीको क्षमा किया है न किसीसे क्षमा चाहती हूं। पश्चाताप! मैं पश्चाताप करूं? किस बात का पश्चाताप? मृगेन्द्र! मुझे अपने गिरनेका दुख नहीं है। अपनीही शक्तिसे ऊपर चढ़ी थी और गिर पडी। इसका कोई दुःख नहीं है। दुःख है तो इस बातका कि, मेरी प्रतिहिंसा अधूरी रह गई। खैर, अब मै जहर खा चुकी हूं। और नरक की भीषण ज्वालामें जलने जा रही हूं। औ र सा .थमें ले. .जा र...ही· हूं. .बौ...द्ध .भि ..क्षु. की .क्ष.. था ह था...ह... (गिर पड़ती है)

मृगेन्द्र—आश्चर्य है! अद्भुत स्त्री थी। प्रमिला! ईश्वर तुम्हें क्षमा करे।

अशोक—मालूम होता है जसे पापकाशका एक चमकता हुआ नक्षत्र टूट पडा! जैसे महत्वाकांक्षाका जलता हुआ चिराग बुझ गया! जैसे कृतघ्नताके सिरसे मुकुट गिर पड़ा! अच्छा इसके दाह संस्कारका प्रबन्ध किया जाय।

वीताशोक—भगवन्! इस सृष्टिके इन पापमय दृश्योंको देख कर मुझे संसारसे घृण हो गई है। अब मै इस पापमय संसार को छोडकर बुद्ध धर्मकी पवित्र शरण लेना चाहता हू मेरा इसी समय प्रबन्ध कर दीजिये।

अशोक—भैया! तुम यह क्या कर रहे हो? अभी तक तुमने संसारका कुछ भी सुख अनुभव नहीं किया। अभीसेही दीक्षा क्यों लेते हो? कुछ दिन संसार सुखका भोग करो, फिर जैसी इच्छा हो वैसा करना।

वीताशोक—नहीं भगवन्! मुझे उस संसार का अनुभव करनेकी इच्छा नहीं जहांपर इस प्रकारके दृश्य नित्यप्रति हुआ करते हैं। आप शीघ्रता करें।

अशोक—(आखोंमें आंसू भरकर) भैया! मैं बड़ी दुविधामें हूं। न तो तुम्हे दीक्षासे रोक सकता हूं, न लेनेको कह सकता हूं, एक और कर्त्तव्य खड़ा है, दूसरी ओर बन्धुप्रेम रोकता है। खैर जैसी तुम्हारी इच्छा।

वृद्धि—अशोक! मेरे लिये भी दीक्षाका प्रबन्ध करदो जिससे

शेषजीवनमें अपने किये पापोंका प्रायश्चित कर सकूं।

(पीतवस्त्र और खड़ाऊं मंगवाते हैं। मोगलीपुत्रतिष्य और उपगुप्ताचार्य आकर दोनोंको दीक्षा देते हैं)

सब—भगवन् बुद्धकी जय ! कुमार वीताशोककी जय !

(पटाक्षेप)

सातवां-दृश्य

(स्थान एक बहुत सजा हुआ मण्डप)

(अशोक, प्रणयिनी, जितेन्द्र, इन्दिरा, मृगेन्द्र, आचार्ययुगल और स्वामी चिदानन्द)

(चिककी ओटमें रानी इन्दुमती और राजघरानेकी स्त्रियां बैठीं हैं)

अशोक—(मृगेन्द्रसे) वीर श्रेष्ठ ! मुझे अपने किये हुए गत अपराधोंके लिये क्षमा करो। तुम्हारा सारा परिवार क्षमासे भी अधिक महत्, सहानुभूतिसे भी अधिक सुहृद और कृतज्ञतासे भी विनम्र है। तुम्हारे पुत्र और कन्याने कई बार मेरे प्राणोंकी रक्षा की है। राजन् ! आपको तो मैं क्या दे सकता हूं, पर हां, अपनी प्रिय भगिनी इन्दिरा को तुम्हारे आदर्श पुत्र जितेन्द्रके सुपुर्द करता हूं। आशा है कि आप स्वीकार करेंगे।

मृगेन्द्र—भगवन् ! आपके समान नररत्नोंकी भेटको अस्वीकार करनेकी ताकत मुझमें नहीं है।

(मोगलीपुत्रतिष्य इन्दिराका हाथ जितेन्द्रके हाथमें देते हैं)

स्वामी चिदानन्द—बेटी प्रणयिनी ! तुम भी आओ और चक्र-

वर्तीके साथ अपने जीवनके शेष दिन व्यतीतकर संसारमें सुख और यशको प्राप्त करो।

(प्रणयिनी मृगेन्द्रकी ओर देखती है)

मृ—बेटी ! आचार्यकी आज्ञाका पालन करो।

(प्रणयिनी बहुत लज्जित भावसे उठती है, चिदानन्द अशोकके हाथमें उसका हाथ देते हैं)

मो०पु०ति-ये विवाह बहुतही शुभ है। इन विवाहोंके कारण दो जातियोंके बीचमें हमेशासे बहती हुई युद्धकी आंधी थम गई; इन विवाहोंके कारण दो जातियोंके बीचमे बहती हुई खूनकी नदी सूख गई। यह विवाह अशोक और प्रणयिनी एवं जितेन्द्र और इन्दिराका नहीं है, यह विवाह शान्ति और कर्मका, अहिंसा और धर्मका है। यह जातीयताके साथ मनुष्यत्वका विवाह है। त्यागके साथ कर्मण्यताका विवाह है। स्वर्गलोकके साथ मर्त्य-लोकका विवाह है। इसके स्पर्शसे विश्वास उज्वल हो गया है। कर्त्तव्य और भी सुन्दर हो गया है। प्रेमने अपूर्व रूप धारण कर लिया है!

(गानेवाली और नाचनेवाली आती हैं)

(संगीत और नृत्यके साथ परदा गिरता है)

सिद्धार्थकुमार

एक विलक्षण चित्रका नमूना

मिलनेका पता गान्धी हिन्दी मन्दिर अजमेर